(ALL RIGHTS RESERVED.)

राय बहादुर बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय सी० आइ०ई० कृत

दुर्गेशनन्दिनी

(इतिवृत्तमूलक उपन्यास)

जिस को

सर ऐलफ्रेड वडली क्रौफ्ट के. सी. आइ. ई., एम. ए.,
डाइरेक्टर औफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, बङ्गाल के
आज्ञानुसार पहले पहल

स्वर्गीय म० कु० बाबू रामदीन सिंह

ने

श्री बाबू राधाकृष्ण दास से अनुवाद करा कर
प्रकाशित किया था।

खड्गविलास प्रेस

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।
रामप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया।

विक्रमाब्द १९७६] खृष्टाब्द १९१९ [हरिश्चन्द्राब्द ३५

दाम ॥=)

PRATAP SINGH PUBLIC LIBRARY
Kashmir
No. ...
Received on ... 10-2-2

दुर्गेशनन्दिनी ।

प्रथम खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

देवमन्दिर ।

बङ्गला सन् ९९७ की ग्रीष्म ऋतु के अन्त में एक दिन एक अश्वारोही पुरुष विष्णुपुर से मान्दारन की ओर अकेला जा रहा था। दिनमणि (सूर्यनारायण) को अस्ताचल गमनोद्योगी देखकर अश्वारोही अति वेग से घोड़ा फेकने लगा। क्योंकि सामने बड़ा भारी मैदान था कदाचित् कालधर्मानुसार प्रदोषकाल में अधिक आंधी पानी

आवे तो इसी मैदान में निराश्रय अत्यंत कष्ट सहना पड़ेगा। मैदान पार न हो सका था कि सूर्यास्त हो गया। क्रमशः नैश आकाश नील नीरदमाला से आवृत होने लगा। संध्या होते ही चारों ओर ऐसा अन्धकार छा गया कि आगे घोड़ा बढ़ाना अत्यंत कठिन हो गया। केवल बिजली के दिखाये हुए पथ से किसी प्रकार चलने लगा।

देखते देखते बड़े हहास से आंधी चलने लगी, साथही प्रबल वृष्टिधारा गिरने लगी। अश्वारोही ने अपने गंतव्य पथ का पता न पाया। घोड़े की रास शिथिल होने से घोड़ा इच्छानुसार चलने लगा। इसी भांति थोड़ी दूर चलने पर घोड़े के पैर में कोई कठिन वस्तु लगी, उस का पैर फिसल गया। इस समय एक-बार बिजली के चमक जाने से अश्वारोही ने आभा मात्र देखा कि सामने कोई बड़ा भारी धवलाकार पदार्थ है। वह धवलाकार पदार्थ कोई अट्टालिका होगी यह विचार वह घोड़े से भूमि में कूद पड़ा। उतर कर देखा कि पत्थर की सीढ़ियों में लग कर घोड़े का पैर फिसला था, निकट ही आश्रय स्थान है यह समझ कर घोड़े को जाने दिया और आप अंधेरे में सावधानी से सीढ़ी पर चढ़ने लगा। बिजली की चमक से थोड़ी ही देर पीछे देखा कि सम्मुख की अट्टालिका एक देवमंदिर है। कौशल से मन्दिर के छोटे से द्वार पर पहुंच कर देखा बन्द है। हाथ से टटोलने से विदित हुआ कि द्वार बाहर से बन्द नहीं है। इस जनहीन में में इस देवमन्दिर में ऐसे समय में किस ने भीतर से सिकरी च कर रक्खी है यह सोच कर पथिक किंचित् विस्मित और चकि

हुआ। सिर पर मूशलाधार पानी गिर रहा है, अब घर में चाहे कोई क्यों न हो, पथिक बलपूर्वक किवाड़ खड़खड़ाने लगा किन्तु कोई भी दरवाज़ा खोलने न आया। जी में आया पद प्रहार से किवाड़ तोड़ डालैं परन्तु देवालय की अमर्यादा होगी इस आशंका से ऐसा नहीं किया तथापि काठ की किवाड़, जैसे वेग से वह पीट रहा था कब तक ठहर सकती थी सिकरी खुल गई। द्वार खुलतेही युवा ने ज्यों ही मन्दिर में पैर रक्खा, त्योंही मन्दिर के भीतर से अस्फुट चीत्कारध्वनि उस के कान में आई। खुले द्वार से आंधी का झटका लगने से वहां जो प्रदीप जलता था वह बुझ गया। मन्दिर के भीतर कौन मनुष्य है और किस देवता का मन्दिर है प्रवेशकर्त्ता कुछ भी न देख सका। अपनी ऐसी अवस्था देखकर निर्भीक युवा पुरुष ने कुछ हास्य कर के पहिले मन्दिर की अदृश्य देवमूर्ति को लक्ष्य कर के भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उठकर अन्धकार में पुकार कर पूछा—"इस मन्दिर में कौन है?" किसी ने इस प्रश्न का उत्तर न दिया, परन्तु अलंकार की झनकार कान में पड़ी। अब वृथा वाक्य व्यय करना निष्प्रयोजन समझ कर पथिक ने बौछार और हवा के झटके को रोकने के लिये किवाड़ बन्द कर दिया और टूटी हुई सिकरी के बदले अपनी पीठ से किवाड़ को दबा कर फिर कहा—"मन्दिर में जो कोई हो वह सुनै—हम सशस्त्र यहां द्वार पर बैठते हैं। हमारे विश्राम में विघ्न न करना। विघ्न करने से यदि पुरुष होगा फल भोग करैगा और यदि कोई स्त्री हो, तो निश्चिन्त सोवे; राजपूत के हाथ में ढाल तलवार रहने से तुमलोगों के पैर में कुशांकुर भी न गड़ने पावैगा।"

"आप कौन हैं" मन्दिर के भीतर से वामास्वर से यह प्रश्न हुआ। पथिक ने विस्मय पूर्वक कहा—"स्वर से जान पड़ता है यह प्रश्न किसी सुन्दरी ने किया है। हमारे परिचय से आप लोगों को क्या लाभ?"

मन्दिर के भीतर से उत्तर मिला—"हम लोग बहुत ही भीत हो रही हैं।"

युवा ने कहा—"हम जो कोई क्यों न हों, हम लोगों को आत्म-परिचय देने की रीति नहीं है। किन्तु हमारे उपस्थित रहते अबला जाति को किसी प्रकार के विघ्न की आशंका नहीं है।"

रमणी ने उत्तर दिया—"आप की बात सुनकर हम लोगों को साहस हुआ, अब तक हम लोग मृतप्राय हो रही थीं। हमारी सहचरी अबतक अर्धमूर्च्छिता है। हम लोग संध्या को इसी शैलेश्वर की पूजा करने आई थीं। आंधी पानी आने से हमलोगों के कहार, दास, दासी सब हम लोगों को यहां फेंक कर कहां चले गये कुछ पता नहीं।"

युवक ने कहा—"कुछ चिन्ता न कीजिये आप विश्राम कीजिये हम कल्ह आपलोगों को घर पहुंचा देंगे।" रमणी ने कहा—"शैलेश्वर आप का भला करें।"

आधी रात के समय पानी थंभने पर युवक ने कहा—"आप लोग थोड़ी देर साहस कर के किसी भांति रहिये, हम निकट के गांव से एक दिया बाल लावैं।"

यह सुनकर जो बात कर रही थी उस ने कहा—"महाशय, आप को गांव तक न जाना होगा। इस मन्दिर का रक्षक एक

भृत्य यहीं अत्यंत निकट वास करता है। चांदनी खिल गई है, मन्दिर के बाहर ही से आप को उस की कुटी दिखाई देगी। वह अकेला मैदान में रहने के कारण सदा आग बालने की सामग्री घर में रखता है।"

युवक ने उस के कथनानुसार मन्दिर के बाहर आकर देवालय के रक्षक का घर चांदनी में देखा। उस के घर के द्वार पर जाकर उसे जगाया। मन्दिर रक्षक पहिले मारे डर के द्वार न खोलकर किवाड़ की आड़ से कौन आया है, देखने लगा। भली भांति देखने से कोई लक्षण दस्यु का न देख पड़ा। विशेष कर के उस के कहे स्वर्ण मुद्रा का लोभ संवरण करना उस के लिये कष्टसाध्य हो गया। सात पांच विचार कर मन्दिररक्षक ने द्वार खोल कर प्रदीप बाल दिया।

पथिक ने प्रदीप लाकर देखा, मन्दिर में श्वेत प्रस्तर निर्मित शिवमूर्ति स्थापित है। मूर्ति के पीछे दो कामिनी बैठी हैं, जो अल्पवयस्का थीं। वे दिया आने से घूंघट खींचकर नीचे मुख कर के बैठ गईं। परन्तु एक के अनावृत प्रकोष्ठ में हीरा जड़ी चूड़ी और विचित्र कारीगरी की कामदानी का परिच्छद, उस पर रत्नाभरण की सजावट देखकर उस ने समझा यह नवीना निःसन्देह कोई हीनवंशसंभूता नहीं है। दूसरी रमणी का परिच्छद उस से हीन देखकर पथिक ने विचारा—यह नवीना की सहचरी दासी है परन्तु साधारण दासियों से यह कुछ सम्पन्ना है, अवस्था पैंतीस वर्ष की प्रतीत होती है। पथिक ने तुरंत समझ लिया कि उस से इसी वयोज्येष्ठा से बात होती थी। उस ने विस्मय के

साथ देखा कि इन दोनों का पहिरावा इस देश की स्त्री का नहीं है, दोनों ही पश्चिम देशीय, अर्थात् हिन्दुस्तानी वेश धारण किए हैं। युवक उचित स्थान पर मंदिर में दीपक रखकर उन लोगों के सामने आकर खड़ा हो गया। अब उस के शरीर पर दीप का प्रकाश पड़ने से रमणियों ने देखा कि पथिक की अवस्था पचीस वर्ष से कुछ ही अधिक होगी। शरीर इतना लम्बा है कि दूसरे का होता तो कुरूप जान पड़ता, किन्तु युवक के वक्षस्थल की चौड़ाई एवं सर्वांग की बड़ाई की गठन से अलौकिक श्री सम्पादन हो गई है। वर्षा कालीन नवदूर्वादल तुल्य अथवा उस से भी बढ़कर मनोहर कांति, वसंतप्रसूत नवपत्रावली तुल्य वर्णोपरि कवचादि राजपूत जातिपरिच्छद शोभायमान है, कमर की कमरपेटी में म्यान से ढकी तलवार लटक रही है, लम्बे हाथ में लम्बा बरछा, सिर पर पगड़ी, उस पर एक हीरा; कान में मोती के कुण्डल, गले में रत्नों के हार।

परस्पर देखादेखी होने पर दोनों दोनों का परिचय जानने के लिए विशेष व्यग्र हुए किन्तु पहिले परिचय जिज्ञासा करने की अभद्रता स्वीकार करने की किसी ने भी सहसा इच्छा न की।

द्वितीय परिच्छेद ।

आलाप ।

पहिले युवक ही ने अपनी कौतूहल-परवशता प्रकाश की। वयोज्येष्ठा की ओर संबोधन कर के कहा—"अनुभव होता है आप लोग किसी भाग्यवान् के घर की स्त्री हैं, परिचय पूछने में संकोच होता था; किन्तु हमारे परिचय देने में जो प्रतिबंधकता है कदाचित् वह आप लोगों को न हो इस लिए पूछने का साहस करते हैं।"

ज्येष्ठा स्त्री ने कहा—"स्त्रियों का परिचय ही क्या है? जिन की कोई कुलोपाधि नहीं हो सकती वे क्या कहकर परिचय दें? जिन का गुप्त भाव से रहना ही धर्म है वे क्या कह कर आत्म-प्रकाश करैं? जिस दिन ब्रह्मा ने स्वामी का नाम लेने का निषेध किया उसी दिन से आत्मपरिचय देने का भी पथ बन्द कर दिया।"

युवक ने इस का उत्तर न दिया। उस का मन दूसरी ओर था। नवीना रमणी धीरे धीरे एक कोने से घूंघट उठाकर सहचरी के पीछे से एक टक युवक की ओर देख रही थी। कथोपकथन में

करते युवक की दृष्टि भी उस ओर जा पड़ी; फिर दृष्टि न फिरी। उस ने समझा, मानो ऐसी अलौकिक रूपराशि फिर कभी न देख सकेंगे। युवती की आंखों से युवक की आंखें मिलते ही युवती ने अपनी आंखें नीची कर लीं। सहचरी ने उत्तर न मिलने से पथिक के मुंह की ओर देखा। उस को दृष्टि किधर है यह भी उस ने देखा, और उस की संगिन युवक की ओर जो चाव से देख रही थी यह भी जान गई; नवीना के कान में कहा—"क्यों री! साक्षात् शिव स्वयंवरा होगी क्या?"

नवीना ने सहचरी को चुटकी काट कर वैसे ही मृदुस्वर से कहा—"तुम्हारा सत्यानाश हो।" चतुरा सहचरी ने यह देखकर सोचा कि जो लक्षण देखते हैं, कहीं इस अपरिचित युवा पुरुष की तेजः पूर्ण कांति को देखकर, हमारे हस्त समर्पिता यह बालिका मन्मथशरजाल से न बेधी जाय; और कुछ हो या न हो, इस के मन का सुख तो सदा के लिए अवश्य ही नष्ट हो जायगा, अतएव इस पथ को अभी से रोक देना चाहिए। यह अभिप्राय कैसे सिद्ध हो? यदि इंगित कर के अथवा छल कर के युवा को स्थानांतर कर दें तो ठीक हो; यह सोचकर नारी स्वभावसिद्ध चतुरता पूर्वक बोली—"महाशय, स्त्री लोगों का सुनाम ऐसा अपदार्थ है कि हवा का बोझ भी नहीं सहार सकता। आज के तूफान में रक्षा पाना कठिन था, अब कुछ पानी थंभा है देखें चलें, पैदल ही घर की ओर चल सकेंगी।"

युवक ने उत्तर दिया—"यदि आप लोग इतनी रात को पैदल [जाय]गी ही तो चलिए हम आप को पहुंचा आवैं। इस समय

आकाश स्वच्छ हो गया है, हम अब तक अपने स्थान की ओर गए होते परन्तु आप की सखी सरीखी रूपवती को बिना रक्षक यहां छोड़ना उचित न जान कर ही हम अब तक यहां हैं।" कामिनी ने उत्तर दिया—"आप हम लोगों पर जैसी दया प्रकाश करते हैं, इस से कहीं हम लोगों को पीछे अकृतज्ञ न समझैं इसी भय से हमलोग सब वृत्तांत स्पष्ट रूप से नहीं कह सकतीं। महाशय, हम स्त्रियों के मन्द भाग्य की बात आप से क्या कहैं। हमलोग तो स्वाभाविकही अविश्वासिनी समझी जाती हैं, आप हमलोगों को पहुंचा आवैं इस से बढ़ कर हम लोगों के लिए सौभाग्य की बात क्या है; परन्तु जब हमारे प्रभु इस कन्या के पिता पूछैंगे कि तुम इतनी रात के समय किस के साथ आई हो तब क्या उत्तर देंगी?"

युवक ने क्षणमात्र चिन्ता कर के कहा—"यही उत्तर देना कि महाराज मान सिंह के पुत्र जगत सिंह के साथ आई हैं।"

यदि उस समय मन्दिर के भीतर वज्रपात भी होता तो मन्दिरवासिनी स्त्रियां इस से अधिक आश्चर्यित न होतीं। दोनों उठ खड़ी हुईं। कनिष्ठा शिवलिंग के पीछे खसक गई। वाग्विदग्धा वयोज्येष्ठा स्त्री ने अंचल सम्भाल कर दंडवत् किया और हाथ जोड़ कर बोली—"युवराज! बिना जाने सहस्रों अपराध हमलोगों से हुए होंगे, अबोध स्त्री जानकर अपने गुणानुसार क्षमा कीजिए।"

युवराज ने हंसकर कहा—"इन सब गुरुतर अपराधों में क्षमा नहीं है। हां, यदि परिचय दो तो क्षमा कर सकते हैं और जो परिचय न दोगी तो अवश्य उचित दण्ड देंगे।"

नरम बात सुननेही से रसिका को सदा साहस होता है। उस ने कुछ हंसकर पूछा—" क्या दण्ड दीजिएगा, आज्ञा कीजिए, हम को स्वीकार है। "

जगत सिंह ने भी हंसकर कहा—"सङ्ग चलकर तुम्हें घर तक पहुंचा आवेंगे।"

सहचरी ने देखा यह तो भारी संकट है। किसी विशेष कारण से वह नवीना स्त्री का परिचय दिल्लीश्वर के सेनापति को देने में सम्मता न थी; और जो वह उन लोगों को घर तक पहुंचा आते हैं तो इस में और भी क्षति है; वह तो परिचय देने से बढ़कर है, यह सोचकर सहचरी सिर नीचा कर के रह गई।

इतने में मन्दिर के पास ही बहुत से घोड़ों की टाप सुन पड़ी। राज पुत्र ने व्यग्रता पूर्वक मन्दिर के बाहर आकर देखा कि सैकड़ों अश्वारोही सैन्य जा रही है। उन का पहिरावा देखकर पहिचान गए कि यह उन्हीं की राजपूत सेना है। इस के पहिले राजकुमार युद्ध सम्बन्धी कार्य सम्पादन के लिए विष्णुपुर से एक सौ सेना लेकर झटपट पिता के पास जा रहे थे। तीसरे पहर को अपने साथियों से आगे बढ़ आए थे। और वे सब एक रास्ते से और यह दूसरे रास्ते से चलने के कारण राजकुमार अकेले मैदान में विपद्ग्रस्त हो गए थे। अब फिर सभों को देखा परन्तु उन लोगों ने इन्हें देखा या नहीं यह जानने के लिए कहा— "दिल्लीश्वर की जय हो।" यह सुनते ही एक अश्वारोही इन के पास आया। युवराज ने उसे देखकर कहा—"धरम सिंह, भारी आंधी और पानी के कारण हम यहां ठहर गए थे।"

धरम सिंह ने नम्रभाव से प्रणाम करके कहा—"हमलोगों ने युवराज की बड़ी खोज की, अन्त में घोड़े के पैर के चिन्ह को देखते यहां तक पहुंचे, घोड़े को इसी वटवृक्ष के नीचे देखा, उसे लेते आए हैं।"

जगत सिंह ने कहा—"तुम घोड़ा लेकर यहीं ठहरो और दो सवारों को पास वाले किसी गांव से पालकी और उस के योग्य कहार लाने भेजो; और सब लोगों से कह दो आगे बढ़ें।"

धरम सिंह यह आदेश पाकर कुछ विस्मित हुआ, किन्तु प्रभु की आज्ञा में प्रश्न करना अनावश्यक जानकर "जो आज्ञा" कह कर सेना के लोगों से युवराज का अभिप्राय कहा। सेना में पालकी की बात सुनकर किसी ने एक दूसरे से मुसकिरा कर कहा—"आज तो नई पद्धति दिखाई पड़ती है!" दूसरे ने उत्तर दिया—"नहीं यह कुछ बात नहीं है। महाराज राजपूतपति को सैकड़ों ही रानी हैं।"

इधर युवराज के अनुपस्थिति काल में अवसर पाकर घूंघट हटाकर सुन्दरी ने सहचरी से कहा—"विमले! राजपुत को परिचय देने में तुम क्यों हिचकती हो?"

विमला ने कहा—"इस का उत्तर हम तुम्हारे पिता के सामने देंगी। सुनो तो यह कोलाहल कैसा सुनाई पड़ता है?"

नवीना ने कहा—"ज्ञान पड़ता है युवराज की सेना उन्हें खोजती हुई आ पहुंची है। जब कि स्वयं राजकुमार उपस्थित हैं तब क्यों चिन्ता करती है?"

जो अश्वारोहीगण पालकी आदि लाने गांव की ओर गए थे उन के लौटकर आने के पूर्व ही वे कहार पालकी लिए उन रक्षकों के साथ, जो आंधी पानी आने के पूर्व स्त्रियों को यहां छोड़ गये थे आ गये, इन लोगों ने पासवाले गांव में जा कर आश्रय लिया था। दूर ही से उन लोगों को आते देख जगत सिंह ने मन्दिर के भीतर जाकर परिचारिका से कहा—"कई एक अस्त्रधारी सिपाही पालकी लिवाए आ रहे हैं, बाहर आकर देखो तो ये लोग तुम्हारे ही साथ के हैं न ?" विमला ने बाहर आकर देखा कि ये लोग उसी के रक्षक हैं।

राजकुमार ने कहा—"तो अब हम यहां न ठहरेंगे, हमारे साथ इन लोगों की भेंट होने से अनिष्ट हो सकता है, अतएव हम जाते हैं। शैलेश्वर जी से प्रार्थना करते हैं तुम लोग निर्विघ्न पहुंचो। तुम लोगों से यही प्रार्थना है कि हम से भेंट होने का समाचार एक सप्ताह तक किसी के आगे प्रकाश न करना, और हमें भूल न जाना, वरंच स्मरणार्थ यह सामान्य वस्तु अपने पास रक्खो। और हम ने तुम्हारे प्रभु की कन्या का परिचय नहीं पाया यही बात हमारे हृदय में स्मरणार्थ चिन्ह स्वरूप रही।"

यह कह कर पगड़ी से खोल कर मोती की लड़ी विमला को पहिरा दी। विमला ने बहुमूल्य रत्नहार केशपाश में रख कर राजकुमार को प्रणाम करके कहा—"युवराज! हम ने जो परिचय नहीं दिया इस के लिए हमें अपराधिनी न जानिएगा; इस का कोई ठीक कारण है। अतएव यदि आप इस विषय में विशेष

कौतूहल में पड़े हों तो आज के दूसरे पक्ष में आप से कहां भेंट होगी सो हम को बताते जाइए।''

जगत सिंह ने थोड़ी देर चिन्ता करके कहा—''आज के पन्द्रहें दिन रात्रि के समय इसी मन्दिर में हम से भेंट होगी। जो यहां हमें न पाओ तो समझना कि अब भेंट न होगी।''

''देवता आप की रक्षा करें'' कह कर विमला ने फिर प्रणाम किया। युवराज फिर से अत्यन्त चाह भरी आंखों से युवती की ओर देख कर कूद कर घोड़े पर चढ़ बैठे और चल दिये।

तृतीय परिच्छेद।

मुग़ल पठान।

रात के समय जगत सिंह ने शैलेश्वर के मन्दिर से यात्रा की। इस समय उन का अनुगमन अथवा मन्दिर अधिष्ठात्री मनोमोहिनी का संवाद कह कर पाठक महाशयों का कौतूहल निवारण न कर सकें। जगत सिंह राजपूत हैं, बङ्ग देश में किस लिये आए, और इस मैदान में अकेले क्यों जा रहे थे, इस का परिचय देने के लिये इस समय की बङ्गदेश सम्बन्धीय राजकीय घटना का विवरण संक्षेप में प्रकाश करना आवश्यक है। अतएव यह परिच्छेद

इतिहास सम्बन्धी होगा। पाठक लोग जो नितांत अधीर हो हो गये हों तो इसे छोड़ सकते हैं; परन्तु ग्रन्थकार का परामर्श यही है कि अधैर्य होना अच्छा नहीं।

पहिले पहिल बख़्तियार ख़िलजी के बङ्गदेश अधिकार करने के पीछे, पठानों ने कई सौ वर्ष तक बिना रोक टोक बङ्गदेश का शासन किया। सन् ६७२ हिजरी में विख्यात सुलतान बाबर लड़ाई में दिल्ली के बादशाह इब्राहीमलोदी को पराभूत कर के, उस के सिंहासन पर बैठा; किन्तु बङ्गदेश उसी समय तैमूरलंग वंशवालों के अधीन नहीं हुआ।

जब तक मुग़ल बादशाहों के कुलतिलक अकबर बादशाह का अभ्युदय नहीं हुआ था तब तक इस देश में स्वाधीन पठान राजा लोग राज्य करते रहे। निर्बोध दाऊद खां ने कुसमय में सोए हुए सिंह को छेड़ा, अपने कर्म के कारण अकबर के सेनापति मुनियम खां से पराजित हो कर राज्यच्युत हुए। दाऊद खां अपने दल के साथ सन् ६८२ हिजरी में उड़ीसा की ओर भाग गया। बङ्गदेश मुग़ल बादशाह के हाथ आया। पठानों के उत्कल देश में संस्थापित होने पर उन्हें वहां से उखाड़ना मुग़लों को कष्टसाध्य हुआ। ६८६ हिजरी में दिल्लीश्वर के प्रतिनिधि ख़ां जहां ख़ां ने द्वितीय बार पठानों को पराजित करके उत्कल देश को अपने प्रभु के शासनाधीन किया। इस के पीछे एक और भी दारुण उपद्रव उपस्थित हुआ था। अकबरशाह की ओर से मालगुज़ारी अदा करने की जो नई प्रणाली संस्थापित हुई, उस से जागीरदार आदि ज़मींदार लोग बहुत अप्रसन्न हो गये। वे लोग अपना पूर्वाधिपत्य रक्षार्थ खड्ग-

हस्त हो गये। अत्यन्त दुर्दमनीय राजविद्रोह उपस्थित होने पर, समय पाकर उड़ीसा में पठानों ने फिर सिर उठाया, और कुतलू ख़ां नामक एक पठान को अधिपति बना कर फिर उड़ीसा हस्तगत कर लिया। मेदिनीपुर भी उन लोगों के अधिकार में हो गया।

महा निपुण राजप्रतिनिधि अजीम ख़ां, उन के पीछे शहबाज ख़ां, कोई भी शत्रुविजित देश का पुनरुद्धार न कर सके। अन्त में इस परिश्रमसाध्य कार्य के लिये एक हिन्दू सेनापति भेजा गया।

महामति अकबर अपने पूर्वगामी बादशाहों से सब बातों में विज्ञ थे। उन के हृदय में प्रतीति हो गई थी कि इस देश के राज कार्य सम्पादन में एतद्देशीय लोग ही विशेष दक्ष हैं। विदेशीय लोग वैसे नहीं हैं; और युद्ध तथा राज्यशासन में राजपूत लोग ही दक्षाग्रगण्य हैं। इसी से वह सदा एतद्देशीय विशेष कर राजपूतों ही को गुरुतर राज्यकार्य में नियुक्त करते थे।

उस समय में जो राजपूत लोग ऊंचे पदों पर थे, उन में महाराज मान सिंह एक प्रधान पुरुष थे। वह ख़ास अकबर के बेटे सलीम के साला थे। अज़ीम ख़ां, और शहबाज ख़ां के उत्कल जय में असमर्थ होने पर अकबर ने इन्हीं महात्मा को बंग और बिहार का शासनकर्त्ता नियत किया।

९९६ साल में मान सिंह ने पटना नगर में आकर पहिले और सब उपद्रवों को शांत किया। दूसरे वर्ष उत्कल विजय करने की इच्छा से उधर की यात्रा की। मानसिंह ने पहिले पटना में

इतिहास सम्बन्धी होगा। पाठक लोग जो नितांत अधीर हो हो गये हों तो इसे छोड़ सकते हैं; परन्तु ग्रन्थकार का परामर्श यही है कि अधैर्य होना अच्छा नहीं।

पहिले पहिल बख़्तियार ख़िलजी के बङ्गदेश अधिकार करने के पीछे, पठानों ने कई सौ वर्ष तक बिना रोक टोक बङ्गदेश का शासन किया। सन् ९७२ हिजरी में विख्यात सुलतान बाबर लड़ाई में दिल्ली के बादशाह इब्राहीमलोदी को पराभूत कर के, उस के सिंहासन पर बैठा; किन्तु बङ्गदेश उसी समय तैमूरलंग वंशवालों के अधीन नहीं हुआ।

जब तक मुग़ल बादशाहों के कुलतिलक अकबर बादशाह का अभ्युदय नहीं हुआ था तब तक इस देश में स्वाधीन पठान राजा लोग राज्य करते रहे। निर्बोध दाऊद ख़ां ने कुसमय में सोए हुए सिंह को छेड़ा, अपने कर्म के कारण अकबर के सेनापति मुनियम ख़ां से पराजित हो कर राज्यच्युत हुए। दाऊद ख़ां अपने दल के साथ सन् ९८२ हिजरी में उड़ीसा की ओर भाग गया। बङ्गदेश मुग़ल बादशाह के हाथ आया। पठानों के उत्कल देश में संस्थापित होने पर उन्हें वहां से उखाड़ना मुग़लों को कष्टसाध्य हुआ। ९८६ हिजरी में दिल्लीश्वर के प्रतिनिधि ख़ां जहां ख़ां ने द्वितीय बार पठानों को पराजित करके उत्कल देश को अपने प्रभु के शासनाधीन किया। इस के पीछे एक और भी दारुण उपद्रव उपस्थित हुआ था। अकबरशाह की ओर से मालगुज़ारी अदा करने की जो नई प्रणाली संस्थापित हुई, उस से जागीरदार आदि ज़मींदार लोग बहुत अप्रसन्न हो गये। वे लोग अपना पूर्वाधिपत्य रक्षार्थ बङ्ग-

हस्त हो गये। अत्यन्त दुर्दमनीय राजविद्रोह उपस्थित होने पर, समय पाकर उड़ीसा में पठानों ने फिर सिर उठाया, और कुतलू खां नामक एक पठान को अधिपति बना कर फिर उड़ीसा हस्तगत कर लिया। मेदिनीपुर भी उन लोगों के अधिकार में हो गया।

महा निपुण राजप्रतिनिधि अजीम खां, उन के पीछे शहबाज खां, कोई भी शत्रुविजित देश का पुनरुद्धार न कर सके। अन्त में इस परिश्रमसाध्य कार्य के लिये एक हिन्दू सेनापति भेजा गया।

महामति अकबर अपने पूर्वगामी बादशाहों से सब बातों में विज्ञ थे। उन के हृदय में प्रतीति हो गई थी कि इस देश के राज कार्य सम्पादन में एतद्देशीय लोग ही विशेष दक्ष हैं। विदेशीय लोग वैसे नहीं हैं; और युद्ध तथा राज्यशासन में राजपूत लोग ही दक्षाग्रगण्य हैं। इसी से वह सदा एतद्देशीय विशेष कर राजपूतों ही को गुरुतर राज्यकार्य में नियुक्त करते थे।

उस समय में जो राजपूत लोग ऊंचे पदों पर थे, उन में महाराज मान सिंह एक प्रधान पुरुष थे। वह खास अकबर के बेटे सलीम के साला थे। अज़ीम खां, और शहबाज खां के उत्कल जय में असमर्थ होने पर अकबर ने इन्हीं महात्मा को बंग और बिहार का शासनकर्त्ता नियत किया।

९९६ साल में मान सिंह ने पटना नगर में आकर पहिले और सब उपद्रवों को शांत किया। दूसरे वर्ष उत्कल विजय करने की इच्छा से उधर की यात्रा की। मानसिंह ने पहिले पटना में

इतिहास सम्बन्धी होगा। पाठक लोग जो नितांत अधीर हो हो गये हों तो इसे छोड़ सकते हैं; परन्तु ग्रन्थकार का परामर्श यही है कि अधैर्य होना अच्छा नहीं।

पहिले पहिल बख़्तियार खिलजी के बङ्गदेश अधिकार करने के पीछे, पठानों ने कई सौ वर्ष तक बिना रोक टोक बङ्गदेश का शासन किया। सन् ६७२ हिजरी में विख्यात सुलतान बाबर लड़ाई में दिल्ली के बादशाह इब्राहीमलोदी को पराभूत कर के, उस के सिंहासन पर बैठा; किन्तु बङ्गदेश उसी समय तैमूरलंग वंशवालों के अधीन नहीं हुआ।

जब तक मुग़ल बादशाहों के कुलतिलक अकबर बादशाह का अभ्युदय नहीं हुआ था तब तक इस देश में स्वाधीन पठान राजा लोग राज्य करते रहे। निर्बोध दाऊद ख़ां ने कुसमय में सोए हुए सिंह को छेड़ा, अपने कर्म के कारण अकबर के सेनापति मुनियम ख़ां से पराजित हो कर राज्यच्युत हुए। दाऊद ख़ां अपने दल के साथ सन् ६८२ हिजरी में उड़ीसा की ओर भाग गया। बङ्गदेश मुग़ल बादशाह के हाथ आया। पठानों के उत्कल देश में संस्थापित होने पर उन्हें वहां से उखाड़ना मुग़लों को कष्टसाध्य हुआ। ६८६ हिजरी में दिल्लीश्वर के प्रतिनिधि ख़ां जहां ख़ां ने द्वितीय बार पठानों को पराजित करके उत्कल देश को अपने प्रभु के शासनाधीन किया। इस के पीछे एक और भी दारुण उपद्रव उपस्थित हुआ था। अकबरशाह की ओर से मालगुज़ारी अदा करने की जो नई प्रणाली संस्थापित हुई, उस से जागीरदार आदि ज़मींदार लोग बहुत अप्रसन्न हो गये। वे लोग अपना पूर्वाधिपत्य रक्षार्थ खड्ग-

हस्त हो गये। अत्यन्त दुर्दमनीय राजविद्रोह उपस्थित होने पर, समय पाकर उड़ीसा में पठानों ने फिर सिर उठाया, और कुतलू ख़ां नामक एक पठान को अधिपति बना कर फिर उड़ीसा हस्तगत कर लिया। मेदिनीपुर भी उन लोगों के अधिकार में हो गया।

महा निपुण राजप्रतिनिधि अजीम ख़ां, उन के पीछे शहबाज ख़ां, कोई भी शत्रुविजित देश का पुनरुद्धार न कर सके। अन्त में इस परिश्रमसाध्य कार्य के लिये एक हिन्दू सेनापति भेजा गया।

महामति अकबर अपने पूर्वगामी बादशाहों से सब बातों में विज्ञ थे। उन के हृदय में प्रतीति हो गई थी कि इस देश के राज कार्य सम्पादन में एतद्देशीय लोग ही विशेष दक्ष हैं। विदेशीय लोग वैसे नहीं हैं; और युद्ध तथा राज्यशासन में राजपूत लोग ही दक्षाग्रगण्य हैं। इसी से वह सदा एतद्देशीय विशेष कर राजपूतों ही को गुरुतर राज्यकार्य में नियुक्त करते थे।

उस समय में जो राजपूत लोग ऊंचे पदों पर थे, उन में महाराज मान सिंह एक प्रधान पुरुष थे। वह ख़ास अकबर के बेटे सलीम के साला थे। अज़ीम ख़ां, और शहबाज ख़ां के उत्कल जय में असमर्थ होने पर अकबर ने इन्हीं महात्मा को बंग और बिहार का शासनकर्त्ता नियत किया।

९९६ साल में मान सिंह ने पटना नगर में आकर पहिले और सब उपद्रवों को शांत किया। दूसरे वर्ष उत्कल विजय करने की इच्छा से उधर की यात्रा की। मानसिंह ने पहिले पटना में

पहुंच कर आप वहीं रहने की इच्छा करके बंगदेश के शासन के लिये सईद खां को अपना प्रतिनिधि नियत किया। सईद खां ने यह भार पाकर अपना निवास उस समय की राजधानी तांडा नगर में किया था। अब लड़ाई की इच्छा से यात्रा करके मान सिंह ने अपने प्रतिनिधि को रणक्षेत्र में बुलाया। सईद खां को लिखा कि अपनी सेना लेकर वर्धमान में हम से मिलो।

वर्धमान में पहुंच कर राजा ने देखा सईद खां नहीं आये, केवल दूत द्वारा यह समाचार भेज दिया कि सैन्य आदि संग्रह करने में उन्हें बहुत विलम्ब होने की सम्भावना है, यहां तक कि उन को सैन्य सज्जित करके आते आते वर्षा काल आ जायगा। इस से इस समय यदि महाराज मान सिंह वर्षा शेष तक शिबिर स्थापन करके रहें तो वर्षा बीतते ही वह सेना लेकर उपस्थित होंगे। महाराज मान सिंह ने अगत्या उन के परामर्शानुसार दारुकेश्वर के तट पर शिबिरसंस्थापन किया। वहां सईद खां की प्रतीक्षा में रहने लगे।

वहीं उन्हें समाचार मिला कि इन का आलस्य देख कर कुतलू खां का साहस बढ़ता जाता है। इसी साहस से मान्दारन के निकट ही सेना सहित आकर लूट मार कर रहा है। राजा ने उद्विग्न हो कर, शत्रु दल कहां है, किस अभिप्राय से आया है, क्या कर रहा है, यही सब संवाद निश्चय जानने के लिये अपने एक प्रधान सेनापति को भेजना उचित समझा। मान सिंह के साथ युद्ध में उन के प्रिय पुत्र जगत सिंह भी आए थे। जगत सिंह को इस दुःसाहसिक भार के लेने में उत्सुक देख कर महाराज ने

एक सौ सिपाही साथ देकर शत्रु शिविर की ओर भेज दिया। राजकुमार कार्यसिद्ध करके बहुत शीघ्र लौट आए। जिस समय काम पूरा करके लौट रहे थे उसी समय उस मैदान में पाठक महाशय से उन से भेंट हुई थी।

चतुर्थ परिच्छेद ।

नवीन सेनापति ।

शैलेश्वर के मन्दिर से चल कर जगत सिंह के पितृशिविर में पहुंचने पर, महाराज मान सिंह पुत्र के मुख से अवगत हुए कि प्रायः पचास हज़ार पठान सेना धरपुर गांव के निकट शिविर स्थापन कर के पास वाले गांवों को लूट रहे हैं, और स्थान स्थान पर दुर्ग निर्माण तथा अधिकार कर के उस के आश्रय में एक प्रकार से निर्विघ्न रहते हैं। मानसिंह ने विचारा कि पठानों की दुर्वृत्ति शीघ्र ही दमन होनी आवश्यक है परन्तु यह कार्य अत्यन्त दुःसाध्य है। कर्तव्या-कर्तव्य निरूपण करने के लिए साथ आये हुए सेनापतियों को एकत्रित कर के सब समाचार प्रकाश कर के कहा—"दिन पर दिन गांव गांव पर्गना पर्गना दिल्लीश्वर के हाथ से

निकलते जाते हैं। इस समय पठानों का शासन किए बिना काम नहीं चल सकता; परन्तु किस प्रकार से इन का शासन किया जाय? वे लोग हमारी अपेक्षा संख्या में बलवान् हैं, दूसरे दुर्गों के भीतर बैठ कर युद्ध करेंगे, युद्ध में पराजित करने पर भी उन लोगों को विनष्ट वा स्थानच्युत न कर सकेंगे; सहज ही में दुर्ग में घुस कर निरापद हो जायंगे। तुम लोग विचार कर के देखो, यदि हमलोग हारे तो शत्रुदल के अधिकार में निराश्रय सब को नष्ट होना पड़ेगा। ऐसा अन्याय साहस कर दिल्लीश्वर की इतनी अधिक सेना को नाश करने का उपक्रम करना, अथवा उड़ीसा जय करने की आशा एक बारगी छोड़ देना, हमारी समझ में अनुचित जान पड़ता है। सईद खां की प्रतीक्षा करना ही उचित जान पड़ता है, और शत्रु दमन करने का शीघ्र ही कोई उपाय करना भी आवश्यक है। तुम लोग क्या परामर्श देते हो?"

वृद्ध सेनापतियों ने एक मत हो कर परामर्श दिया कि सईद खां की प्रतीक्षा करना ही कर्तव्य है। महाराज मान सिंह ने कहा—"हमारा अभिप्राय यह है कि जिस में सब सेना नाश होने की संभावना न हो सो करना, अर्थात् केवल थोड़ी सी सेना किसी दक्ष सेनापति के साथ शत्रुदमन को भेज दी जाय।"

एक वृद्ध मुग़ल सेनापति ने कहा—"महाराज! जहां इतनी सेना भेजने में भी आशंका होती है वहां थोड़ी सी सेना कौन काम करेगी?"

मान सिंह ने कहा-"थोड़ी सेना सम्मुख लड़ाई के लिए नहीं भेजना चाहते। यह छोटी सेना गुप्त भाव से रह कर उक्त पठानों के छोटे छोटे दलों को जो ग्रामों में उत्पात कर रहे हैं, कुछ दमन कर सकैगी।"

मुग़ल सेनापति बोला-"महाराज, जान बूझ कर कालग्रास में कौन सेनापति जायगा?"

मान सिंह ने भौंह टेढ़ी कर के कहा-"क्या इतने राजपूत और मुग़लों में से कोई ऐसा नहीं है जो मृत्यु से भय न करता हो?"

यह सुनते ही पांच सात मुग़ल और राजपूतों ने उठकर कहा-"महाराज! हम सब गुलाम जानेको तयार हैं" जगत सिंह भी वहां उपस्थित थे; वह सब से अवस्था में छोटे थे, सब के पीछे कहा-"आज्ञा हो तो यह दास भी दिल्लीश्वर के कार्यसाधन का यत्न करे।"

मान सिंह ने आश्चर्य के साथ कहा-"न क्यों होगी? आज हम ने जाना कि अभी मुग़ल और राजपूत नाम लोप होने में विलम्ब है। तुम सभी इस कठिन काम के करने में प्रस्तुत हो, अब किस को भेजें और किस को न भेजें?"

एक पारिषद ने हंसकर कहा-"महाराज! बहुत से लोग इस कार्य में उद्यत हुए सो अच्छा ही हुआ, इसी उपलक्ष से सेनाव्यय में भी कमी कर सकियेगा, जो सब से कम सेना ले जाना स्वीकार करें उन्हीं पर इस राजकार्य साधन का भार दीजिए।"

राजा ने कहा-"यह उत्तम परामर्श है।" पहिले जो उद्यत हुआ था उस की ओर फिर कर पूछा-"तुम कितनी सेना ले

जाना चाहते हो ?" सेनापति ने कहा-"हम पन्द्रह हज़ार पदाति लेकर यह राजकार्य उद्धार कर सकैंगे।"

राजा ने कहा-"इस शिविर में से पन्द्रह हज़ार सेना निकाल देने से यहां बहुत कम रह जाते हैं। कोई वीर दस हज़ार सेना लेकर जाना चाहता है ?"

सेनापतिगण चुप रहे। अंत में महाराज के प्रिय पात्र यशवंत सिंह नामक राजपूत योद्धा ने राजाज्ञा पालने की अनुमति मांगी। राजा हृष्ट चित्त से सभों की ओर देखने लगे, कुमार जगत सिंह उन की दृष्टि पड़ने की अभिलाषा से खड़े थे, उन की ओर राजा को दृष्टि पड़ते ही उन्हों ने विनीतभाव से कहा—

"महाराज ! राजकृपा होने से यह दास पांच ही हज़ार सेना लेकर कुतलू खां को सुवर्ण रेखा पार तक पहुँचा आवैगा।"

राजा मान सिंह अवाक हो गए। सेनापति लोग आपस में काना फूसी करने लगे। थोड़ी देर पोछे राजा ने कहा-"बेटा ! हम जानते हैं, तुम राजपूत कुल के गौरव हो; परन्तु यह तुम अन्याय साहस करते हो।"

जगत सिंह ने कहा-"यदि प्रतिज्ञा पालन न कर के बादशाह के सेना बल को घटावैं तो राजदंड से दंडनीय हों।"

राजा मान सिंह ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा-"हम तुम्हारे राजपूत कुल धर्म प्रतिपालन में व्याघात न करैंगे; इस काम के लिए तुम्हीं जाओ।"

यह कह कर राजकुमार को डबडबाई आंखों से देखकर गाढ़ आलिंगन कर के बिदा किया। सेनापति लोग अपने २ डेरे में गए।

पंचम परिच्छेद ।

गढ़ मान्दारन ।

जिस रास्ते से जगत सिंह विष्णुपुर से जहानाबाद गए थे उस का चिन्ह अब तक वर्त्तमान है। उस से थोड़ी दूर दक्षिण मान्दारन गांव है। इस समय मान्दारन एक छोटा सा गांव है, परन्तु उस समय एक बड़ा सुन्दर नगर था। जिन रमणियों से जगत सिंह को मन्दिर में भेंट हुई थी वे मन्दिर से उठकर इसी गांव की ओर गईं।

गढ़ मान्दारन में कई एक प्राचीन दुर्ग थे, इसी कारण इस का नाम गढ़ मान्दारन पड़ा होगा। नगर के भीतर से दामोदर नदी प्रवाहित है, एक स्थान पर इस नदी की गति ऐसी वक्र हो गई थी, कि उस के पास का एक त्रिकोण भूमिखंड दो ओर से वेष्टित हो गया था, तीसरी ओर खोदी हुई एक खाई थी; इस त्रिकोण भूमिखंड के अगले भाग में, जहां से नदी की वक्रगति आरम्भ हुई थी, एक बृहत् दुर्ग जल से आकाश की ओर सिर ऊंचा किए विराजमान था। सब अट्टालिका जड़ से लेकर चोटी तक काले पत्थर से बनी थीं; दो ओर प्रबल नदीप्रवाह दुर्गमूल में टकराता था।

अब तक मान्दारन में जाने से इस दुर्लंघ्य दुर्ग का विशाल ढूहा दिखाई पड़ेगा, दुर्ग का निम्न भाग मात्र वर्त्तमान है, अट्टालिका काल के चक्र में पड़ कर धूलराशि हो गई है, अब उस पर इमली-वृक्ष तथा माधवी लता आदि इतनी सी लग गये हैं कि कानन समान हो कर सर्प भालू आदि हिंसक पशुओं को स्थान दे रही हैं। नदी के उस पार भी कई एक दुर्ग थे।

बंगाल के पठान राजाओं के मुकुटमणि हुसेन शाह के विख्यात सेनापति इस्माईल ग़ाज़ी ने इस दुर्ग को बनवाया था। किन्तु कुछ काल पीछे जयधर सिंह नामक एक हिन्दू सैनिक ने इसे जागीर में पाया था। इस समय वीरेन्द्र सिंह नामक जयधर सिंह के एक वंशधर निवास करते हैं।

युवावस्था में वीरेन्द्र सिंह की पिता से नहीं बनती थी। वीरेन्द्र सिंह स्वभावतः दाम्भिक और अधीर था, पिता की आज्ञा कदाचित् ही पालन करता, इसी से पिता पुत्र में सदा झगड़ा टंटा हुआ करता। वृद्ध ज़मींदार ने पुत्र के विवाह का सम्बन्ध निकट के स्वजातीय एक ज़मींदार के यहां ठहराया था। कन्या का पिता पुत्रहीन था इस से वीरेन्द्र सिंह की सम्पत्ति बढ़ने की सम्भावना थी। कन्या भी सुन्दरी थी, इस से वृद्ध की समझ में यह सम्बन्ध अत्यन्त आदरणीय प्रतीत हुआ; वह विवाह का उद्योग करने लगा। किन्तु वीरेन्द्र ने इस सम्बन्ध का आदर न करके अपने गांव की एक पति पुत्रहीना दरिद्रा स्त्री की कन्या से गुप्त भाव से विवाह कर लिया था। अब फिर विवाह करना स्वीकार न किया। वृद्ध ने मारे क्रोध के पुत्र को घर से निकाल दिया। युवा ने घर से निकल कर

6553.

युद्ध की वृत्ति अवलम्बन करने की इच्छा से दिल्ली की यात्रा की। उस समय उस की स्त्री गर्भवती थी इस से साथ न ले जा सका। वह मा की कुटी में रही।

इधर पुत्र के देशान्तर चले जाने के पीछे वृद्ध के अन्तःकरण में पुत्रविच्छेद जनित मनः पीड़ा का सञ्चार होने लगा। 'गतानुशोचन' परवश हो कर पुत्र का संवाद मंगाने का यत्न करने लगा; परन्तु कृतकार्य न हुआ। पुत्र को न लौटा ला सका, तब उस के बदले में पुत्रवधू को आदर के साथ दरिद्रा की कुटी से अपने घर लाया। उपयुक्त समय होने पर वीरेन्द्र सिंह की स्त्री ने एक कन्या प्रसव किया। कुछ दिन पीछे कन्या की मा का प्रसूति ही में परलोक हो गया।

वीरेन्द्र दिल्ली में आकर मुगल बादशाह की आज्ञाकारी राजपूत सेना में योद्धा के काम पर नियुक्त हुआ, थोड़े ही दिनों में अपने गुणों से ऊंचे पद पर पहुंच गया। वीरेन्द्र सिंह ने कई वर्ष में धन और यश सञ्चय करने पर पिता के लोकान्तर होने का समाचार पाया। अब देश देश घूमना या पराधीन वृत्ति निष्प्रयोजन समझ कर घर लौट आए। वीरेन्द्र सिंह के साथ दिल्ली से बहुत से सहचर आए थे। उन में एक परिचारिका और एक परमहंस भी थे। परिचारिका का नाम विमला, परमहंस का नाम अभिराम स्वामी था।

विमला गृहकर्म में विशेष कर के वीरेन्द्र की कन्या के लालन पालन में नियुक्त रहती, इस के अतिरिक्त दुर्ग में विमला के रहने का और कोई कारण न दिखाता, इस से हमें उसे दासी कहना

पड़ा; किन्तु विमला में दासीपन के कोई लक्षण न थे। जैसे गृहस्वामिनी का मान होता वैसे ही पुरवासियों के निकट विमला भी मानी जाती थी; सभी पुरवासी उस के अधीन रहते। मुख की शोभा देखने से जान पड़ता यौवन में विमला परम सुन्दरी थी। प्रातःकाल के चन्द्रमा की भांति प्रतिभा इस वयस् में भी थी। गजपति विद्यादिग्गज नामक अभिरामस्वामी का शिष्य था, उसे अलंकार शास्त्र में कुछ व्युत्पत्ति हो या न हो पर रसिकता करने की तृष्णा बड़ी प्रबल थी। वह विमला को देख कर कहता—"यह दाई मानो घी का घड़ा है, मदनाग्नि ज्यों ज्यों शीतल होती जाती है, त्यों त्यों इस का शरीर मानो जमता जाता है।" यहां यह कह रखना आवश्यक है कि जिस दिन गजपति विद्यादिग्गज ने यह रसिकता कह मारा उसी दिन से विमला ने इन का नाम "रसिकराज रसोपाध्याय" रक्खा।

आकार विचार व्यतीत विमला की सत्यता तथा वाक्चतुरता ऐसी थी कि वह मामूली दासी में कभी संभव नहीं है। बहुतेरे कहते हैं कि विमला बहुत दिनों तक मुग़ल बादशाह की पुरवासिनी थी; यह बात झूठी है वा सच्ची सो विमला ही जानती होगी, पर वह कभी इस बात की चर्चा न करती।

विमला विधवा है वा सधवा? सो कौन जानता है? पर गहना पहनती है, एकादशी नहीं करती। सधवा की भांति सब आचरण करती है।

दुर्गेशनन्दिनी तिलोत्तमा को विमला जैसे दिल से प्यार करती थी सो मन्दिर में कहा जा चुका है। तिलोत्तमा भी विमला

को वैसा ही मानती थी। वीरेन्द्र सिंह के दूसरे साथी अभिराम-स्वामी सदा दुर्ग में न रहते। बीच बीच में देश पर्यटन करने भी आया करते, दो एक महीना गढ़ मान्दारन में तो दो एक महीना बाहर घूमने में बिताते। पुरवासी तथा और और लोगों को यह प्रतीति थी कि अभिरामस्वामी वीरेन्द्र सिंह के दीक्षा गुरु हैं; वीरेन्द्र सिंह उन का जैसा सम्मान और आदर करते उस से यही सम्भावना होती थी। यहां तक कि सांसारिक काम भी बिना अभिरामस्वामी के परामर्श के न करते, और प्रायः गुरुदत्त परामर्श सदा सफल होता। वस्तुतः अभिरामस्वामी बहुदर्शी और तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न थे भी; और अपने व्रत धर्म में सांसारिक अधिकांश विषयों में रिपुसंयत करने का भी अभ्यास किया था। और उचित रूप से राग क्षोभ आदि दमन कर के स्थिर चित्त हो कर अवसर पर सब बातों की आलोचना कर सकते। फिर ऐसे स्थान पर अधीर दाम्भिक वीरेन्द्र सिंह के मत की अपेक्षा इन का मत फलप्रद हो तो कौन आश्चर्य्य था?

विमला और अभिरामस्वामी के अतिरिक्त आसमानी नाम की एक दासी और भी वीरेन्द्र सिंह के साथ आई थी।

—:०:—

षष्ठ परिच्छेद।

अभिराम स्वामी की मन्त्रणा।

तिलोत्तमा और विमला शैलेश्वर के मन्दिर से निर्विघ्न घर पहुंचीं। उन के लौटने के तीन चार दिन पीछे वीरेन्द्र सिंह अपने दीवानखाने में मसनद पर बैठे हैं, इतने में अभिराम स्वामी वहां आ उपस्थित हुए। वीरेन्द्र सिंह ने खड़े हो कर दण्डवत् किया। अभिराम स्वामी वीरेन्द्र सिंह के दिए कुशासन पर बैठ गए, तब वीरेन्द्र सिंह भी उन के आज्ञानुसार बैठे। अभिराम स्वामी ने कहा–"वीरेन्द्र! आज तुम से एक विशेष बात कहनी है।"

वीरेन्द्र सिंह ने कहा–"आज्ञा हो।"

अभिराम स्वामी ने कहा–"इस समय मुग़ल और पठानों में तुमुल युद्ध उपस्थित है।"

वी०—हां, कोई भारी उपद्रव होने की सम्भावना है।

अ०—सम्भव है—अब कर्तव्य क्या है?

वीरेन्द्र ने दर्प के साथ कहा–"शत्रु उपस्थित होने पर अपने बाहुबल से हटावेंगे।"

परमहंस ने और भी मृदु भाव से कहा-" वीरेन्द्र ! यह तुम्हारे तुल्य वीर के उपयुक्त प्रत्युत्तर है, पर बात यह है कि केवल वीरत्व ही से जय लाभ नहीं होती, यथानीति सन्धि विग्रह करने ही से जय लाभ होती है। तुम आप वीराग्रगण्य हो परन्तु तुम्हारे पास हज़ार से अधिक सेना नहीं है, बताओ कौन योद्धा एक हज़ार सेना लेकर अपने से सौगुनी अधिक सेना को विमुख कर सकता है ? मुग़ल और पठान दोनों दल ही तुम से सौगुन बली हैं, बिना एक दल की सहायता के दूसरे दल के हाथ से उद्धार नहीं हो सकते। इस समय रुष्ट मत हो, स्थिर चित्त होकर विवेचना करो। और यह भी एक बात है कि दोनों पक्ष से शत्रुता करने से प्रयोजन क्या ? शत्रु का नाम बुरा है, पर दो शत्रु से एक शत्रु होना क्या अच्छा नहीं है ? अतएव हमारी समझ में पक्षापक्ष करना ही उचित है।"

वीरेन्द्र बहुत देर तक चुप रह कर बोले-" तो किस का पक्ष अवलंबन करने की अनुमति देते हैं ?"

अभिराम स्वामी ने उत्तर दिया-" यतो धर्मस्ततो जयः ; जिस पक्ष के अवलंबन करने में अधर्म न हो उसी पक्ष में जाओ। राज-विद्रोहिता करना महा पाप है, राजपक्ष अवलंबन करो।"

वीरेन्द्र ने फिर थोड़ी देर सोचकर कहा-" राजा कौन ? राज्य ही के लिए तो मुग़ल पठान दोनों लड़ रहे हैं ?"

अभिराम स्वामी ने उत्तर दिया-"जो कर लेता है वही राजा।"

वी०—अकबर शाह ?

अ०—अवश्य।

इस बात से वीरेन्द्र सिंह ने मुखभंगी अप्रसन्न बना लिया, क्रमशः आंखें रक्तवर्ण हो गई; अभिराम स्वामी ने आकारेंगित देखकर कहा– "वीरेन्द्र ! क्रोध को रोको, हम ने तुम से दिल्लीश्वर के अनुगत होने को कहा है, कुछ मान सिंह की अधीनता करने को नहीं कहा है।"

वीरेन्द्र सिंह ने दहिना हाथ फैला कर परम हंस को दिखलाया; दहिने हाथ पर बाएं हाथ की उंगली से दिखा कर कहा— "आप के चरण कमलों के आशीर्वाद से यही हाथ मानसिंह के रक्त से प्लावित करेंगे।"

अभिराम स्वामी ने कहा– "स्थिर हो, क्रोधांध हो कर अपना काम मत नष्ट करना; मानसिंह के पूर्वकृत अपराधों का अवश्य दंड देना, पर अकबर शाह के साथ युद्ध करने से कौन काम ?"

वीरेन्द्र क्रोध के साथ कहने लगे–" अकबर शाह का पक्ष लेने से किस सेनापति के अधीन होकर युद्ध करना होगा ? किस का अनुगमन करना होगा ? मान सिंह का। गुरुदेव ! इस देह के वर्तमान रहते तो वीरेन्द्र सिंह से यह काम नहीं हो सकता।"

अभिराम स्वामी उदास होकर चुप हो रहे। थोड़ी देर पीछे पूछा–" तो क्या पठानों की सहायता करना तुम्हें अच्छी लगी ?"

वीरेन्द्र ने उत्तर दिया–" पक्षापक्ष का प्रभेद करना क्या अच्छा होगा ?"

अ०—हां, पक्षापक्ष सा प्रभेद करना अच्छा होगा।

वी०—तो हमें पठान का सहकारी होना अच्छा है।

अभिराम स्वामी दीर्घ श्वास लेकर फिर चुप हो रहे, उन की आंखों में जल भर आए। यह देखकर वीरेन्द्र सिंह ने अत्यन्त विस्मित हो कर पूछा—"गुरो! क्षमा कीजिए, हम ने अनजानते क्या अपराध किया, आज्ञा कीजिए?"

अभिराम स्वामी ने उत्तरीय वस्त्र से आंख पोंछ कर कहा—"सुनो, हम कई दिन से ज्योतिष की गणना में लगे हैं; यह तुम जानतेही हो कि तुम से बढ़ कर तुम्हारी कन्या हमारे स्नेह की पात्री है, स्वभावतः उसी के सम्बन्ध में बहुत कुछ गणना किया।" वीरेन्द्र सिंह का मुख सूख गया, आग्रह सहित परमहंस से पूछा—"गणना में क्या देखा?" परमहंस ने कहा—"देखा कि मुग़ल सेनापति से तिलोत्तमा का महा अमंगल होगा।" वीरेन्द्र सिंह का मुंह श्याम हो गया। अभिराम स्वामी कहने लगे—

"मुग़लों के विपक्ष होने ही से उन के द्वारा तिलोत्तमा का विशेष अमंगल होना सम्भव है, स्वपक्ष होने से नहीं। इसी लिए हम तुम्हें मुग़ल पक्ष की ओर प्रवृत्ति दिलाते थे। यह बात प्रकाश करके तुम्हें मनःपीड़ा देने की इच्छा नहीं थी। मनुष्य का किया यत्न विफल होता है, जान पड़ता है भाग्य का लिखा अवश्य होनेवाला है, नहीं तो तुम ऐसे स्थिर प्रतिज्ञ क्यों होते?"

वीरेन्द्र सिंह मौन ही रहे। अभिराम स्वामी ने कहा—"वीरेन्द्र! द्वार पर कुतलू खां का दूत खड़ा है, हम उसी को देखकर तुम्हारे पास आए थे, हमारे निषेध करने ही से द्वारपालों ने अब तक तुम्हारे सम्मुख उस को नहीं आने दिया है; अब हमारी बात जो थी पूरी हो गई, दूत को बुलाकर उचित उत्तर दो।" वीरेन्द्र

सिंह ने सांस लेकर सिर उठाकर कहा—"गुरुदेव ! जब तक तिलोत्तमा को देखा नहीं था तब उसे कन्यां समझ कर कभी स्मरण भी न करते; इस समय तिलोत्तमा छोड़ संसार में हमारा दूसरा कोई नहीं है, आप की आज्ञा शिरोधार्य किया, अब से पहिले की बातों को विसर्जन किया, मान सिंह के अनुगामी होंगे। द्वारपाल दूत को बुलाओ।"

आज्ञानुसार द्वारपाल दूत को लिवा लाया। दूत ने कुतलू खां का पत्र दिया। उस पत्र का मर्म यही था कि, वीरेन्द्र सिंह एक हज़ार सेना और पांच हज़ार स्वर्णमुद्रा पठानशिविर में भेज दें; नहीं तो कुतलू खां बीस हज़ार सेना मान्दारन गढ़ की ओर भेजेंगे।

वीरेन्द्र सिंह ने पत्र पढ़कर कहा—"दूत ! अपने प्रभु से कहना वही सेना भेज दें।" दूत सिर झुकाकर चला गया।

आड़ में से विमला ने सब बातें सुन लीं।

—:*:—

सप्तम परिच्छेद।

असावधानता।

दुर्ग के जिस भाग में दुर्गमूल को धोती हुई दामोदर नदी कल कल कर बह रही है, उसी ओर एक खिड़की में बैठ कर तिलोत्तमा नदी जलावर्त की शोभा देख रही है। सायान्ह काल उपस्थित है, पश्चिम आकाश में अस्ताचलगत सूर्यनारायण की मलिन किरणों जिन से सब मेघों ने कांचन कांति धारण किया है, नीलांबर प्रतिबिंब के साथ मिलकर स्रोतस्वती जल में हिल रहा है; नदी पार की अट्टालिका और बड़े बड़े वृक्ष गण स्वच्छ आकाशपट में चित्रवत् दिखाई पड़ते हैं; दुर्ग के भीतर सारसादि मधुर शब्दकारी पक्षीगण प्रफुल्ल चित्त से बोल रहे हैं; कहीं रजनी के उदय से विहंगम गण खोतों की खोज में नीलांबर के नीचे निःशब्द उड़ रहे हैं। आम्रकानन को हिलाते दामोदर को स्पर्श करते शीतल वायु तिलोत्तमा के अलककुंतल अथवा सुन्दर कामदानी के वस्त्र को डुला रहे हैं।

तिलोत्तमा सुन्दरी है। पाठक, सुन्दरी का रूपानुभव कराना चाहते हैं, परंतु किस प्रकार से इस रूपराशि का अनुभव करावें?

पाठक! कभी किशोर वयस् में किसी स्थिरा, धीरा, कोमल प्रकृतिवाली किशोरी का नवसंचारित लावण्य प्रेमचक्षु से देखा है? जिस का माधुर्य एकबार देखकर चिर जीवन विस्मृत नहीं हो सकता; कैशोर, यौवन, तथा प्रगल्भ वयस् में, काम करते, विश्राम में, सोते, जागते, पुनः पुनः जो मनोमोहिनी मूर्ति स्मरण पथ में स्वप्नवत् घूमा करती है, अथच उस के संबंध से कभी चित्त को मलिन करनेवाली लालसा न जन्मी हो, ऐसी तरुणी देखा है? यदि देखा होगा, तो तिलोत्तमा के अवयव स्वरूप का मन में अनुभव कर सकैंगे। जो मूर्ति सौन्दर्य प्रभा की प्रचुरता से मन को प्रदीप्त करती है, जो मूर्ति लीलालावण्यादि की परिपाटी से हृदय में विषधरदंत रोपित करती है, यह वह मूर्ति नहीं है, जो मूर्ति कोमलता मधुरता आदि गुणों से चित्त में संतुष्टि जन्माती है यह वही मूर्ति है। जो मूर्ति संध्या के वायु से वसंतलता की भांति स्मृति में हिलती रहती है यह वही मूर्ति है।

तिलोत्तमा की वयस् सोलह वर्ष की है, इस से उस के शरीर ने प्रगल्भ वयसी रमणियों की भांति अब तक सम्पूर्णता नहीं प्राप्त की है। शरीर के अवयव और मुख पर बालिका की आभा थी, सुगठित सुगोल ललाट, अप्रशस्त नहीं है, और न अति प्रशस्त ही है, निशीथकौमुदीदीप्त नदी की भांति प्रशांत भाव प्रकाशक है। उस के पास ही अत्यंत निविड़ वर्ण कुंचितालक केश, भ्रू युगल, कपोल, गंडस्थल, कंधे और छाती पर बिखर रहे हैं। मस्तक के पिछले भाग में अंधकार मय केशराशि सुन्दर मुक्ता हार से ग्रथित हैं; ललाट के नीचे भ्रू युगल सुबंकिम, निविड़ वर्ण, चित्रकार सा

होने पर भी किंचित् अधिक सूक्ष्माकार है; एक सूत और स्थूल होने से निर्दोष हो जाती। पाठक ! क्या आप को चंचल आंखें रुचती हैं ? तब तो तिलोत्तमा आप की मनोरंजिनी नहीं हो सकती। तिलोत्तमा की आंखें अत्यंत शांत हैं; उस में "विद्युद्दाम स्फुरन चकित" कटाक्ष निक्षेप नहीं होता। चक्षु युगल अति प्रशस्त, अति सुठाम, अतिशांत ज्योति हैं। और चक्षु का वर्ण, ऊषा काल में सूर्योदय के किंचित् पूर्व, चन्द्रांत के समय आकाश में जो कोमल नील वर्ण प्रकाश होता है, उसी के समान है, इन प्रशस्त परिष्कार आंखों से जिस समय तिलोत्तमा देखती, उस समय उस में नाम मात्र भी कुटिलता न रहती। तिलोत्तमा दृगकोर से अर्धदृष्टि करना न जानती, दृष्टि में केवल स्पष्टता और सरलता थी; दृष्टि में भी सरलता है, और मन में भी सरलता है, पर हां, यदि उस की ओर कोई देखने लगता, तो तत्क्षणात् दोनों कोमल पल्लव आ पड़तीं; उस समय तिलोत्तमा पृथ्वी छोड़ दूसरी ओर दृष्टि न करती। दोनों ओष्ठाधर गुलाबी, रस छलका पड़ता है; छोटे छोटे, कुछ घूमे हुए, कुछ उमड़े हुए, कुछ मुसकिराते हुए, उस ओष्ठाधर में यदि कभी हंसी देखा, तो चाहे योगी हो, मुनी हो, युवा हो, वृद्ध हो, फिर कभी भूल नहीं सकता। उस हंसी में सरलता, और बालिकाभाव व्यतीत और कुछ भी नहीं था।

तिलोत्तमा का शरीर सुगठन होने पर भी पूर्णता प्राप्त नहीं था, वयस की नवीनता ही से हो, वा शरीर के स्वाभाविक गठन ही से हो, इस सुन्दर देह में क्षीणता व्यतीत स्थूलता का गुण

नहीं था अथच चित्रवत् शरीर में सभी स्थान सुगोल और सुललित, सुगोल कलाई में रत्नजटित कंकण, सुगोल बाहु पर हीरा जड़े टाड़, सुगोल अंगुलियों में अंगूठियां, सुगोल उरु पर कांची, सुगठित कंधों पर रत्नहार, सुगठित गले में रत्नकंठी; सर्वाङ्ग का गठन सुन्दर।

तिलोत्तमा अकेली खिड़की में बैठी क्या कर रही है? क्या सायाह्न आकाश की शोभा देख रही है? ऐसा है तो पृथ्वी पर दृष्टि क्यों है? क्या नदी तीरस्थ कुसुमसुवासित वायु सेवन कर रही है? ऐसा होने से ललाट पर पसीने की बूंद क्यों चुचुहा रही हैं? मुख के एक ओर के सिवाय तो वायु लगती नहीं। क्या गोचारन देख रही है? नहीं, यह भी तो नहीं है, गाय तो सभी क्रमशः घर आ गईं। कोकिल का कुहकना सुनती है? तो फिर मुख इतना मलिन क्यों है? तिलोत्तमा न कुछ देखती है, न सुनती है, केवल चिंता कर रही है।

दासी दीपक जला लाई। तिलोत्तमा चिंता छोड़ कर एक पुस्तक लेकर दीपक के पास आ बैठी। तिलोत्तमा पढ़ना जानती, अभिराम स्वामी से संस्कृत पढ़ी थी। पुस्तक कादम्बरी थी। थोड़ी देर तक पढ़ने पर विरक्त हो कर कादम्बरी रख दी। एक दूसरी पुस्तक लाई; सुबन्धु कृत वासव दत्ता; कभी पढ़ती, कभी सोचती, फिर पढ़ती, फिर सोचने लगती, वासवदत्ता भी अच्छा न लगा। उसे रख कर गीतगोविन्द पढ़ने लगी। गीतगोविन्द थोड़ी देर तक अच्छी लगी। "मुखरमधीरं त्यज मंजीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्" यह पद पढ़ते ही सलज्ज कुछ मुस्करा कर

पुस्तक फेंक दी। तब चुपचाप शय्या पर बैठ गई। पास ही कलम दावात थी, उसे उठा कर पलंग की पाटी पर यह, वह, क, ख, म, प, घर, द्वार, वृत्त, मनुष्य इत्यादि लिखने लगी। क्रमशः पलंग की एक पाटी स्याही से पूर्ण हो गई, जब स्थान न मिला तब उस विषय से चेतना हुई, अपने कामों को देख कर मुस्किरा दी, और लिखा क्या है सो हंसते २ पढ़ने लगी। क्या लिखा है! वासवदत्ता, महाश्वेता, क, ई, इ, प, एक वृत्त, शैलेश्वर, गीतगोविंद, विमला, लता, पत्ता, हिजी, बिजी, गढ़, हाय हाय यह और क्या लिखा है?

"कुमार जगत सिंह"

लज्जा से तिलोत्तमा का मुख रक्तवर्ण हो गया। निर्बुद्धि इस घर में कौन है? किस से लज्जा?

"कुमार जगत सिंह" तिलोत्तमा ने दो बेर, तीन बेर, कई बेर पाठ किया; द्वार की ओर देखती है और पाठ करती है, फिर देखती है, फिर पढ़ती है मानो चोर चोरी कर रहा है।

बहुत देर तक पाठ करने का साहस न हुआ, कहीं कोई आकर देख न ले। शीघ्रता से जल लाकर लिखा हुआ धो डाला, धो कर भी जी न भरा, कपड़े से भलीभांति पोंछ डाला। फिर भी ध्यान पूर्वक देखा स्याही का चिन्ह भी नहीं है, तो भी ऐसा प्रतीत हुआ मानो अभी भी पढ़ा जाता है। फिर जल लाकर धोया, फिर कपड़े से पोंछा, फिर भी प्रतीत होने लगा, मानो लिखा है—

"कुमार जगत सिंह"

——:*:——

अष्टम परिच्छेद ।

—:०:—

विमला की मंत्रणा ।

—:०:—

विमला अभिराम स्वामी की कुटी में खड़ी है । अभिराम स्वामी भूमि पर योगासन से बैठे हैं । जगत सिंह के साथ जिस प्रकार से विमला और तिलोत्तमा की भेंट हुई थी, विमला आद्योपांत वह सब अभिराम स्वामी से वर्णन कर रही थी, वर्णन पूरा कर के कहा—"आज चौदहवां दिन है, कल्ह पक्ष पूरा होगा ।" अभिराम स्वामी ने कहा—"फिर अब क्या निश्चय किया है ?"

विमला ने उत्तर दिया—"उचित परामर्श लेने ही तो हम आप के पास आई हैं ।"

स्वामी ने कहा—"अच्छी बात है, हमारा परामर्श यह है कि आज से यह विषय कभी मन में मत आने देना ।"

विमला अत्यन्त उदास हो कर चुप हो रही । अभिराम स्वामी ने पूछा—'उदास क्यों हो गईं ?"

विमला ने कहा—"तिलोत्तमा का कौन उपाय होगा ?

अभिराम स्वामी ने विस्मयपूर्वक पूछा—"क्यों ? क्या तिलोत्तमा के मन में अनुराग हो गया ?"

विमला ने कुछ देर तक चुप रह कर कहा—"आप से हम कहां तक कहैं! आज चौदह दिन से हम अहोरात्रि तिलोत्तमा की भावभंगी भली भांति देख रही हैं, हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि तिलोत्तमा के हृदय में अत्यन्त गाढ़ अनुराग का सञ्चार हुआ है।"

परमहंस ने मुसकिरा के कहा-"तुम लोग स्त्री जाति, हृदय में अनुराग का लक्षण देखने ही से समझती हो कि गाढ़ अनुराग है। विमले, तिलोत्तमा के मन के सुख के लिये चिन्ता मत करो। बालिका स्वभाव के कारण ही प्रथम दर्शन में मन चञ्चल हो गया है, इस विषय की बात चीत फिर कभी न होने से ही वह शीघ्र जगत सिंह को भूल जायगी।"

विमला ने कहा-"नहीं, नहीं प्रभु! यह लक्षण नहीं है। एक ही पक्ष में तिलोत्तमा का स्वभाव बदल गया है। तिलोत्तमा हमारे या और दूसरी वयप्राप्ता स्त्रियों के साथ अब उस भांति हंस हंस कर बात नहीं करती, अब प्रायः तिलोत्तमा बोलती ही नहीं, तिलोत्तमा की पुस्तकें पलंग के नीचे पड़ी सड़ रही हैं, तिलोत्तमा के फूल के पेड़ जलाभाव से सूख गए, पक्षियों का अब तिलोत्तमा वैसा यत्न नहीं करती, तिलोत्तमा आहार न करती है, न रात को सोती है, तिलोत्तमा शृंगार नहीं करती; तिलोत्तमा कभी चिन्ता नहीं करती थी, अब रात दिन सोच में रहती है। तिलोत्तमा के मुख पर झांवरापन सा आ गया है।"

अभिराम स्वामी यह सुन कर चुप हो रहे। थोड़ी देर पीछे बोले—"हम समझते थे केवल देखने ही से गाढ़ अनुराग नहीं जन्म

सकता; पर स्त्रीचरित्र है, विशेष कर के बालिकाचरित्र, परमेश्वर ही जाने। परन्तु क्या किया जायगा? वीरेन्द्र इस सम्बन्ध में सम्मत न होगा।"

विमला ने कहा-" हम ने इसी आशङ्का से अब तक इस का कभी उल्लेख नहीं किया। मन्दिर में जगत सिंह को भी परिचय नहीं दिया। परन्तु अब यदि हमारे प्रभु ने—" यह कहते हुए विमला के मुख का किंचित् भावांतर हो गया। "अब यदि हमारे प्रभु ने मान सिंह से मित्रता कर ली, तो फिर जगत सिंह को दामाद बनाने में कौन हानि है?"

अ०—मानसिंह ही क्यों सम्मत होने लगे थे?

वि०—अच्छा, यदि युवराज स्वाधीन हो जायं?

अ०—जगतसिंह क्यों वीरेंद्रसिंह की कन्या से विवाह करने लगा था?

वि०—जाति और कुल में किसी ओर दोष हई नहीं, जयधर सिंह के पूर्व पुरुष लोग भी यदुवंशी थे।

अ०—यदुवंशी की कन्या मुसल्मान के साले के पुत्र की वधू होगी? विमला ने उदासीन की ओर स्थिर दृष्टि करके कहा-"क्यों न होगी? यदुवंशी का कौन कुल घृणायोग्य है?"

यह बात मुंह से निकलते ही परमहंस की आंखों से मारे क्रोध के चिनगारियां निकलने लगीं, कठोर स्वर से कहा—"पापीयसि, अपना दुर्भाग्य अब तक नहीं भूली? दूर हो जा!"

नवम परिच्छेद।

—:o:o:—

कुलतिलक।

जगत सिंह ने पिता के पास से आकर जो जो कार्य किये उस से पठानों की सेना में महाभीति का प्रचार हो गया। कुमार ने प्रतिज्ञा की थी कि पांच हज़ार सेना लेकर कुतलूखां की पचास हज़ार सेना को सुवर्ण रेखा पार उतार देंगे, यद्यपि अब तक उतनी सफलता तो नहीं दिखा सके, तथापि शिविर से आने पर दोही सप्ताह के भीतर उन्हों ने जैसी वीरता गुण का परिचय दिया था, उसे सुनकर माने सिंह ने कहा था—"जान पड़ता है हमारे कुमार के द्वारा राजपूत नाम का पूर्व गौरव फिर उद्दीप्त होगा।"

जगत सिंह भली भांति जानते, कि पांच सहस्र सेना लेकर पचास सहस्र सेना के सन्मुख युद्ध करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है; वरंच पराजय या मृत्यु ही निश्चय धरी है अतएव सन्मुख संग्राम की चेष्टा में न रह कर, जिस में सन्मुख संग्राम न हो, ऐसी रणप्रणाली अवलम्बन किया। वह अपनी अल्प-संख्यक सेना सदा छिपाए रहता, घोर बन में अथवा इस प्रदेश में समुद्र की तरंग की भांति कहीं नीची कहीं ऊंची जो सब भूमि हैं, उन में ऐसे स्थान पर शिविर बनाते, कि पार्श्वस्थ ऊंची भूमि-खंडों की आड़ से, अत्यंत निकट से भी कोई उन की सेना को न

देख सकता । इसी भांति गुप्त भाव से रह कर, जहां कहीं पठानों की छोटी सेना का संधान लगता, तरंग प्रपातवत् वेग के साथ उस के ऊपर सैन्य सहित जा गिरते । और उसे निःशेषही कर डालते । उन के बहुत से चर थे, वह सब फल मूल मत्स्यादि विक्रेता या भिक्षुक, उदासीन, ब्राह्मण, वैद्यादि के वेष में नाना स्थानों में भ्रमण किया करते, और पठान सेना के समाचार आकर दे जाते । जगतसिंह सम्बाद पातेही अत्यंत सावधानता अथच शीघ्रता से ऐसे स्थान पर जाकर सैन्य संस्थापन करते, जिस में आगन्तुक पठान सैन्य पर कौशलपूर्वक और अपूर्व दृष्ट होकर आक्रमण कर सकैं । यदि पठानसेना अधिक संख्यक होती, तो जगतसिंह उन पर आक्रमण करने का कोई स्पष्ट उद्योग न करते, क्योंकि वह जानते थे कि वर्तमान दशा में इस युद्ध में पराजय होने से सभी कुछ नष्ट हो जायगा, उस दशा में पठानसेना के चली जाने पर सावधानता पूर्वक उन के पीछे पीछे जाकर उनके आहार के पदार्थ, घोड़ा, तोप इत्यादि अपहरण करके चले आते और यदि पठानसेना प्रबल न होकर अल्पसंख्यक होती, तो जब तक वे लोग अपने निश्चित स्थान तक न पहुंचते, तब तक तो स्थिर होकर छिपे रहते, पर जहां समय समझते, भूखे सिंह की भांति चीत्कार शब्द करते हुए धावा करके हतभाग्य पठानों को टुकड़े टुकड़े कर डालते । उस अवस्था में पठान लोग शत्रु का पासही में होना तो जानते नहीं; इसी से लड़ाई के लिये प्रस्तुत भी न रहते । अकस्मात् शत्रु प्रवाह मुख में पड़कर प्रायः बिना युद्धही प्राण खो बैठते ।

इसी भांति बहुत सी पठानसेना का निपात हुआ। पठान लोग अत्यन्त क्षतिग्रस्त हुए और सन्मुखयुद्ध में जगतसिंह की सेना को नाश करने के लिये यत्नवान् हुए। परन्तु जगतसिंह की सेना कहां रहती है, इसका पताही न लगता, केवल यमदूत की भांति एक बेर मृत्युकाल में दिखाई पड़कर मृत्युकार्य सम्पादन करके अन्तर्ध्यान हो जाती। जगत सिंह कौशलमय थे, कभी पांचों हज़ार सेना इकट्ठी न रखते। कहीं हज़ार, कहीं पांच सौ, कहीं दो सौ, कहीं दो हज़ार, इसी भांति भिन्न २ करके रखते, जब जहां शत्रु का जैसा पता पाते वहां वैसीही सेना भेजते; काम हो जाने पर फिर वहां न रखते। कब कहां पर राजपूत लोग हैं, कहां नहीं हैं, पठान लोग कुछभी न जान सकते। कुतलूखां के पास सदा सेनानाशही का सम्बाद आता। सवेरे, संध्या, दो पहर, सभी समय अमंगल सम्बाद आते। निदान किसी काम के लिये पठानों की अल्पसंख्यक सेना को दुर्ग के बाहर निकलना दुःसाध्य हो गया। लूट मार एक बारगी बन्द हो गई। सेना ने दुर्ग के भीतर आश्रय लिया, यहां तक कि रसद लाना भी कठिन हो गया। शत्रु पीड़ित प्रदेश इस भांति सुशासित हो जाने का सम्बाद पाकर महाराज मानसिंह ने पुत्र का यह पत्र लिखा —

"कुलतिलक ! तुम्हारे द्वाराही राज्याधिकार पठान शून्य होगा यह जानकर तुम्हारी सहायता के लिये और भी दस हज़ार सेना भेजते हैं।"

युवराज ने उत्तर लिखा—

"महाराज की जैसी इच्छा हो, और भी सेना आवे तो अच्छी ही बात है, नहीं तो श्रीचरण के आशीर्वाद से यह दास पांचही हज़ार से क्षत्रिय-कुलोचित प्रतिज्ञापालन करैगा।"

कुमार वीर मद से मत्त हो कर बिना रोक टोक रण में विजय करने लगे। शैलेश्वर! तुम्हारे मन्दिर में जिस सुन्दरी की सरल दृष्टि से यह योद्धा पराभूत हुआ था, क्या इस सेनाकोलाहल में वह सुन्दरी एक बेर भी स्मरण नहीं आई? यदि न स्मरण आई हो तो जगतसिंह भी तुम्हारेही नाईं पाषाण है।

दशम परिच्छेद।

—:o:*:o:—

मंत्रणा के पीछे उद्योग।

—:*:—

जिस दिन अभिरामस्वामी ने क्रुद्ध होकर विमला को अपने घर से निकाल दिया था, उस के दूसरे दिन प्रदोषकाल में विमला अपनी कोठरी में बैठकर शृङ्गार कर रही थी, पैंतीस वर्षवाली का शृङ्गार! क्यों क्यों न करै? क्या अवस्था से यौवन भी चला जाता है? यौवन जाता है रूप और मन से, जिस को रूप नहीं

है वह बीस ही वर्ष में वृद्धा, जिसे रूप है वह सभी वयस में युवती, जिस के मन में रस नहीं वह चिरकालही प्रवीन, और जिस के रस है, वही चिरकाल नवीन। विमला के आज तक शरीर से रूप ढलका पड़ता है और रस मन से छलका पड़ता है, वयस के साथ और भी रस परिपक्क हो गया है, पाठक महाशय की भी यदि कुछ वयस हुई होगी, तो अवश्य इस बात को स्वीकार करैंगे।

विमला के ताम्बूल रागरक्त ओष्ठाधर को देख कर कौन कहैगा यह युवती नहीं है! उस की कजरारी बड़ी आंखों के चकित कटाक्ष को देखकर कौन कहैगा यह चौबीस वर्ष से न्यूनवय वाली युवती नहीं है, कैसी आंख है! सुदीर्घ, चंचल, मदभरी, किसी किसी प्रगल्भ यौवना कामिनी की आंख देख कर जान पड़ता है कि यह रमणी दर्पिता है। यह रमणी सुख लालसा परिपूर्णा है। विमला की आंखें भी वैसी ही हैं। हम पाठक महाशय से निश्चय कहते हैं विमला युवती है, इसे स्थिर यौवना भी कह सकते हैं। इस के चम्पकवर्ण त्वक् की कोमलता देखकर कौन कहैगा कि षोड़शी इस की अपेक्षा कोमल होगी! उस के कर्णमूल से होकर कपोल पर असावधानता से जो एक अत्यन्त क्षुद्र अलक गुच्छ केश कुंचित होकर आ पड़ी है, उसे देखकर कौन कहैगा, कि युवती के कपोल पर युवती का केश आकर नहीं पड़ा है! पाठक! हृदय की आंखें खोलो, जहां दर्पण के सामने बैठकर विमला केश संवार रही है, उसे देखो; विपुल केशगुच्छ वाम हाथ में लेकर, अपने सामने लाकर जिस भांति कंघी कर रही है, देखो; अपने

यौवन का भाव देख कर जो मन्द २ मुसक्यान कर रही है, देखो, बीच बीच में वीणानिन्दित मधुर स्वर से जो मृदु २ सङ्गीत कर उठती है, उसे सुनो; भली भांति देख सुनकर कहो, विमला को अपेक्षा कौन रमणी तुम्हारी मनोमोहिनी हो सकती है?

विमला ने केश सँवार कर के जूड़ा नहीं बांधा, पीठ पर चोटी को लटका दिया। सुगंधित जल सिंचित रूमाल से मुंह पोछा। गुलाबजल, कर्पर मिश्रित पान से फिर ओष्ठाधर रंजित किया। मुक्ताभूषित कांचली वक्षस्थल में धारण किया, सर्वाङ्ग में कनक रत्न भूषण पहिरा, फिर न जानें क्या सोच कर उन में से कुछ उतार धरा, विचित्र कामदानी के कपड़े पहिरा, मूंगा जड़ी हुई पादुका पहिरी; और सजे हुए केश पर युवराज की दी हुई बहुमूल्य मुक्तालड़ी धारण की।

विमला वेश सज के तिलोत्तमा के निकट गई। तिलोत्तमा उसे देख कर विस्मित हो गई। हँस कर पूछा—

"यह क्या विमला? वेश किस लिये?"

विमला ने कहा—"तुम्हें इस से क्या काम?"

ति०—सच बताओ कहां जाती हो?

वि०—हम कहीं जाती हैं यह तुम से किस ने कहा?

तिलोत्तमा अप्रतिभ हो गई। विमला, उस की लज्जा देख कर सकरुण मुसकिरा कर बोली—

"हम बहुत दूर जायंगी।"

तिलोत्तमा का मुख प्रफुल्ल पद्म की भांति खिल गया। मृदुस्वर से पूछा—"कहां जाओगी?"

विमला ने वैसे ही जीभ दबा कर हँसती हुई कहा—"तुम्हीं अन्दाज़ करो न।"

तिलोत्तमा उस के मुँह की ओर देखने लगी।

विमला उस का हाथ पकड़ कर "इधर सुनो" कह कर खिड़की के निकट ले गई। वहां पर कान में कहा—"हम शैलेश्वर के मन्दिर में जायंगी, वहां किसी राजपुत्र के साथ भेंट होगी।"

तिलोत्तमा का शरीर रोमांचित हो गया, कुछ उत्तर न दिया।

विमला कहने लगी—"अभिराम स्वामी से हम से बात हुई थी, स्वामी जी के विचार में जगत सिंह के साथ तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता। तुम्हारे बाप किसी प्रकार से सम्मत न होंगे। उन के सामने यह बात छेड़ने से लाठी और झाड़ू न लगे तो बड़ी बात है!"

"तब फिर क्यों?" तिलोत्तमा ने नीचा सिर कर के, अस्फुट स्वर से, पृथ्वी की ओर देख कर यही तीन शब्द कहे—

"तब फिर क्यों?"

वि०—क्यों? हम ने राजपुत्र से स्वीकार किया था, कि आज रात को उन से मिल कर परिचय देंगी। केवल परिचय पाकर क्या करेंगे? इस समय तो परिचय देती हैं फिर जो कुछ कर्तव्याकर्तव्य होगा, वह किया करेंगे। यदि राजपुत्र तुम पर अनुरक्त हों—

तिलोत्तमा ने आगे न कहने दिया, कपड़े से मुंह बन्द कर के कहा—"तुम्हारी बात सुन कर लज्जा आती है, तुम्हारी जहां

इच्छा हो जाती क्यों नहीं ? हमारी बात किसी से मत कहना, और न हम से किसी की बात कहना ।"

विमला ने फिर हंस कर कहा—"तो फिर इस बाल्यावस्था में इस समुद्र में क्यों कूदी ?"

तिलोत्तमा ने कहा—"हट यहां से ! अब हम तुम्हारी कोई बात न सुनैंगी ।"

वि०—तो फिर हम मन्दिर न जायं ?

ति०—हम क्या कहीं जाने को मना करती हैं ? जहां इच्छा हो जाओ न ।

विमला हंसने लगी; बोली—"नहीं, हम न जायंगी ।"

तिलोत्तमा ने फिर सिर नीचा कर के कहा—"जाओ—"

विमला फिर हंसने लगी, थोड़ी देर पीछे कहा—"हम जाती हैं जब तक हम न आवैं सो न जाना ।"

तिलोत्तमा ने भी हंस दिया, इस हंसी का अर्थ यह था कि "नींद क्यों आने लगी थी ?" विमला यह अर्थ समझ गई । चलने के समय विमला ने एक हाथ तिलोत्तमा के कंधे पर रक्खा दूसरे हाथ से चिबुक उठा कर, थोड़ी देर तक उस के सरल, प्रेम पवित्र मुख की ओर देख कर स्नेह पूर्वक चुंबन किया, तिलोत्तमा ने देखा, जिस समय विमला जाती थी उस समय उस के आंख में एक बिन्दु जल आ गया था ।

कक्षद्वार पर आसमानी ने आकर विमला से कहा—"सरकार तुम को बुलाते हैं ।"

तिलोत्तमा ने यह सुन कर, पास आ कर कान में कहा-"वेश बदल कर जाओ"।

विमला ने कहा—"कुछ चिन्ता नहीं।"

विमला वीरेंद्र सिंह के शयनकक्ष में गई, वीरेन्द्र सिंह लेटे हुए हैं, एक दासी पैर दाब रही है, और एक पंखा हांक रही है, पलंग के पास जाकर विमला ने कहा—"हम को क्या आज्ञा होती है?"

वीरेंद्र सिंह ने सिर उठा कर चकित होकर पूछा—"तुम किसी काम को जाती हो क्या?"

विमला ने कहा-"जी हां, हम को कुछ आज्ञा होती है?"

वी०—तिलोत्तमा कैसी है? शरीर अस्वस्थ था, अब तो अच्छा है न?

वि०—हां, अब तो अच्छा है।

वी०—थोड़ी देर पंखा तुम हांको। आसमानी! तिलोत्तमा को हमारे पास बुला लाओ।

पंखा हांकनेवाली दासी पंखा रखकर चली गई।

विमला ने आसमानी को बाहर खड़ी होने का इङ्गित किया, वीरेन्द्र ने दूसरी दासी से कहा-"लछमिन, तैं हमारे लिये पान लगा ला" पैर दाबने वाली दासी भी चली गई।

वी०—विमला, आज तुम्हारा यह वेश क्यों है?

वि०—हमें कुछ काम है।

वी०—कौन काम है ? हम सुनना चाहते हैं ।

विमला "तो सुनिये" यह कहते कहते मन्मथशय्यारूपी दोनों आंख से वीरेन्द्र की ओर दृष्टिपात करके कहा—"तो सुनिये, इस समय हम अभिसार की इच्छा से जाती हैं ।"

वी०—क्या यमराज के साथ ?

वि०—क्यों, मनुष्य के साथ क्या नहीं हो सकता ?

वी०—वह मनुष्य तो आज तक जन्माही नहीं ।

वि०—एक मनुष्य छोड़ कर ।

यह कह कर विमला वेग के साथ चल दी ।

एकादश परिच्छेद ।

आसमानी का दौत्य ।

—:o:—

इधर विमला के इङ्गित अनुसार आसमानी घर के बाहर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी, विमला ने आकर उस से कहा—"आसमानी, तुम्हारे साथ कुछ आवश्यक गुप्त बातें करनी हैं ।"

आसमानी ने कहा—"आज का साजबाज देख कर हम भी समझती थीं कि आज कोई भारी मामला है ।"

विमला ने कहा—" आज हम किसी विशेष प्रयोजन से बहुत दूर जायंगी, इतनी रात को अकेली न जा सकेंगी, तुम्हारे सिवाय और किसी को विश्वासी जान के साथ नहीं ले सकती, तुम्हें हमारे साथ चलना होगा।"

आसमानी ने पूछा—" कहां जाओगी ?"

विमला ने कहा—" आसमानी, उस समय तो तुम इतनी पूछ नहीं करती थीं ?"

आसमानी ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—" तुम तनिक सा ठहर जाओ, हमें कई एक काम है उन को निपटा आवें।"

विमला ने कहा—" और एक बात यह है, कि मानलो यदि तुमसे उस समय के किसी मनुष्य से भेंट हो तो वह तुम्हें पहिचान सकेगा ?"

आसमानी ने आश्चर्यित हो कर कहा—" यह क्या ?"

विमला ने कहा—" मानलो यदि कुमार जगतसिंह से भेंट हो जाय ? "

आसमानी बहुत देर तक चुप रहकर गद्‌गद् स्वर से बोली—" क्या ऐसा दिन भी आवेगा ?"

विमला ने कहा—" हो भी सकता है।"

आसमानी ने कहा—" कुमार चीन्ह तो लेंगे।"

विमला ने कहा—" तो तुम्हें न ले जायंगी और किसीको ले जायं, क्योंकि अकेली न जा सकेंगी।"

आसमानी ने कहा—" कुमार को देखने की मन में बड़ी साध है। "

विमला ने कहा—" मन की साध मन में रख, इस समय हम क्या करें ?"

विमला चिन्ता करने लगी। अकस्मात् मुंह में कपड़ा देकर आसमानी हँस पड़ी। विमला ने कहा—" चल्, अपने आप क्यों हंसी पड़ती है ?"

आसमानी ने कहा—" मन में विचार करती थी कि, अपने सोना के चन्द्रमा दिग्गज को तुम्हारे सङ्ग कर दें तो कोई हानि है ?"

विमला ने हँसते हँसते उल्लास पूर्वक कहा-"यही बात ठीक है, रसिकराज ही को सङ्ग लेती हैं।"

आसमानी ने कहा—" ऐसा क्यों करती हो ? हम तो दिल्लगी करती थीं ?"

विमला ने कहा-" दिल्लगी नहीं; सीधे सादे ब्राह्मण पर हमें अविश्वास नहीं है; अन्धे को क्या रात क्या दिन, वह कुछ न समझ सकेगा। इस से उस पर अविश्वास नहीं होता, पर वह जाना चाहेगा नहीं।"

आसमानी ने हँसकर कहा-" यह भार हम पर है, हम उसे साथ लिवा लाती हैं, तुम फाटक के सामने थोड़ी अपेक्षा करना।"

यह कहकर आसमानी हँसते हँसते दुर्ग के बीच एक छोटी कुटी की ओर चली।

अभिराम स्वामी के शिष्य गजपति विद्यादिग्गज इस के पहिले एक बेर पाठक महाशयों के आगे परिचित हो चुके हैं। जिस

कारण से विमला ने उन का नाम रसिकराज रक्खा था, वह भी पाठकों को विदित है, वही महापुरुष इस कुटी के अधिकारी हैं। दिग्गज महाशय लम्बाई में प्रायः साढ़े पांच हाथ होंगे, चौड़ान में कठिनता से आध हाथ तीन अंगुल; दोनों पैर कमर से लेकर भूमि पर्यन्त नापने से साढ़े तीन या चार हाथ होगा, चौड़ान में बल्ली के अन्दाज़; रङ्ग दावात की स्याही; जान पड़ता है, मानो अग्निदेव दोनों पैर काष्ठ भ्रम से भक्षण करते थे, पर कुछ रस न पाकर आधा अङ्गार करके फेंक दिया है। दिग्गज महाशय बहुत लम्बाई से कुछ कुबड़े हो गए हैं, सब शरीर में नाकही प्रबल है, सारे शरीर का मांसाभाव वहीं जाकर संशोधन हुआ है। सिर गिर्देदार खत बना हुआ, मुड़े हुए सिर में जो बाल हैं, बहुत छोटे छोटे; सिर पर हाथ फेरने से सूई के समान गड़ते हैं; ऊर्ध्वपुंड तिलक भली भांति चमचमा रहा है।

गजपति ने "विद्यादिग्गज" उपाधि कुछ शौक से नहीं पाया था, आप की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। लड़कपन में पाठशाला में व्याकरण आरम्भ किया था; साढ़े सात महीने में "सहर्शोघं" लक्षण व्याख्या सहित कंठस्थ कर लिया था। गुरु जी की कृपा और दसपांच विद्यार्थियों के संग में, राम राम कर के पन्द्रह वर्ष के पढ़ने में शब्द कांड शेष किया था। दूसरा कांड आरंभ करने के पूर्व अध्यापक ने सोचा—"देखें तो क्या मामला है?" शिष्य से पूछा—"बताओ तो भैया, राम शब्द के उत्तर अम् करने से क्या होता है?" छात्र ने बहुत सोचकर उत्तर दिया—"रामकांत" अध्यापक ने कहा—"भैया, तुम्हें विद्या आ गई; अब तुम घर

जाओ यहां का पाठ पूरा हो गया, अब हमारे पास ऐसी कोई विद्या नहीं है जो तुम्हें पढ़ा सकें।"

गजपति ने अत्यन्त अहंकार पूर्वक पूछा—"हमारा एक निवेदन है,—हमारी उपाधि ?"

अध्यापक ने कहा—"तुम ने जैसी विद्या उपार्जन किया है, उस के लिये नूतन उपाधि की आवश्यकता है, तुम "विद्या-दिग्गज" उपाधि ग्रहण करो !"

दिग्गज हृष्ट चित्त से गुरुचरण में प्रणाम कर के घर चले।

घर आकर दिग्गज पंडित ने विचार किया—"व्याकरण आदि शास्त्र में तो कृतविद्य हो ही गए। अब थोड़ी सी स्मृति पढ़ना आवश्यक है। सुना है, अभिरामस्वामी बड़े पण्डित हैं, उन के सिवाय हमें शिक्षा दे, ऐसा दूसरा कोई नहीं है; अतएव उन के पास चलकर कुछ स्मृतिशिक्षा करना उचित है।" यही निश्चय कर के दिग्गज दुर्ग में आकर रहे। अभिरामस्वामी सब को शिक्षा देते, किसी पर विरक्त न होते; दिग्गज कुछ सीखै या न सीखै वह पाठ दे देते।

गजपति महाराज केवल वैयाकरण या स्मार्त ही नहीं थे, कुछ अलंकारादि भी जानते, कुछ कुछ रसिक भी थे। घी का घड़ा ही इस का परिचय देता है। उन की रसिकता का आडंबर आसमानी पर कुछ विशेष होता, उन का कुछ गूढ़ तात्पर्य भी था। गजपति सोचते—"हमारे समान व्यक्ति का भारत में केवल लीला करने के लिये अवतार होता है, यही हमारा श्री वृन्दावन है; आसमानी ही हमारी प्रिया है।" आसमानी भी रसिका थी,

मदन मोहन को पाकर वह भी बंदर पालने को साध मिटा लेती। विमला भी पता लगाकर कभी बंदर नचाने चली जाती। दिग्गज सोचता—"यह हमारी चन्द्रावली है; और न क्यों होगी? हमने जो दमपट्टी दिया है वह विमला नहीं जानती और वह मेरी सुनी हुई बात है।

आज माधव के बड़े ही आनंद का दिन है, वृषभानु-सुता कुञ्ज कुटी में आप ही आ रही हैं।

द्वादश परिच्छेद ।

आसमानी का अभिसार ।

दिग्गज गजपति महाशय की मनोहारिनी आसमानी कैसी रूपवती है, यह जानने के लिये पाठक महाशयों को निःसन्देह कौतूहल हुआ होगा, अतएव उन की साध मिटा देते हैं; किन्तु स्त्रियों के रूप वर्णन में ग्रन्थकार जो पद्धति अवलंबन करते हैं, हमारे ऐसे अकिंचन पुरुष को उस पद्धति से बाहर होना बड़ी धृष्टता का काम है। अतएव पहिले मंगलाचरण करना चाहिए।

हे वाग्देवि! हे कमलासने! शरदिन्दुनिभानने! अमलकमल-दल निन्दित चरण भक्त जन वत्सले! हमें उसी चरण कमल को

छाया दान करो, हम आसमानी का रूप वर्णन करेंगे। हे अरविन्दानन सुन्दरीकुल गर्व खर्व कारिणि! हे विशाल रसाल, दीर्घ समान पटल सृष्टि कारिणि! एक बेर पदनख के एक पार्श्व में स्थान दो, हम रूप वर्णन करेंगे। समास = परवल, संधि = बैंगन, उपमा = कच्चा केला, इन सब की मिली तरकारी को सिझा कर तुम्हें भोग रक्खैंगे। हे पंडित कुलेप्सित-पयः प्रस्त्रविणि! हे मूर्ख जनप्रति कचित कृपा कारिणि! हे अंगुलिकंडूयनविषम-विकार समुत्पादिनि! हे बटतला-विद्याप्रदीप-तैल-प्रदायिनि! हमारो बुद्धि प्रदीप को एक बेर उज्ज्वल कर जाओ। माता! तुम्हारे दो रूप हैं, जिस रूप से तुम ने कालिदास को बर दिया था, जिस प्रकृति के प्रभाव से, रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, शकुन्तला का जन्म हुआ; जिस प्रकृति के प्रभाव से वाल्मीकि ने रामायण, भवभूति ने मालतीमाधव, भारवि ने किरातार्जुनीय की रचना की थो, उस रूप से हमारे कंधे पर सवार हो कर दुख मत देना; जिस मूर्ति का ध्यान कर के श्रीहर्ष ने नैषध लिखा था, जिस प्रकृति के प्रसाद से भारतचन्द्र ने विद्या का अपूर्व रूप वर्णन कर के बंगदेश का मन मोहित किया था, जिस के प्रसाद से दाशरथि राय का जन्म, जिस मूर्ति से आज तक भो बटतला को उंजेला किए हो, उसी मूर्ति से एक बेर हमारे स्कंध पर आविर्भूत हो; कि हम आसमानी का रूप वर्णन करें।

आसमानी के बेनी की शोभा नागिन की भांति, नागिन ने मारे ताप के विचार किया, जब कि बेनी से हार हुई तो फिर लोगों के सामने यह मुंह लेकर घूमने से क्या प्रयोजन? चलो

हम बिल में समा जायँ। यह सोच कर वह बिल में समा गई। ब्रह्मा ने देखा यह तो बुरा हुआ, सर्प बिल में समा गए, अब लोगों को काटेगा कौन ? यह विचार उस की पूंछ पकड़ बाहर निकाला। सांप ने देखा फिर हमें मुंह दिखाना पड़ा, मारे क्षोभ के सिर पटकने लगा, पटकते पटकते सिर चिपट हो गया, तभी से सर्प को फन हुआ। आसमानी का मुख अत्यन्त सुन्दर था, इस से चन्द्रदेव उदय न हो सके, और ब्रह्मा से जा कर नालिश की, ब्रह्मा ने कहा—कुछ चिन्ता नहीं, तुम जाकर उदय हो, आज से स्त्रियों का मुख ढका रहैगा, तभी से घूंघट की सृष्टि हुई। दोनों आंख मानों खंजन हैं, कहीं डैना फैला कर पक्षी की भांति ये भी न उड़ जायँ, इस लिये विधाता ने पलक रूपी पिंजरे का किवाड़ लगा दिया। नाक गरुड़ की नाक की भांति अत्यंत विशाल, उसे देख कर गरुड़ मारे शंका के पेड़ पर जा बैठे, तभी से पक्षीकुल पेड़ ही पर रहने लगे; किसी कारण से अनार ने बङ्ग देश छोड़ कर पटना प्रदेश में निवास किया, और हाथी कुम्भ सहित ब्रह्मा देश को भागा; अब रहे धवलागिर, उन्हों ने देखा हमारी चोटी कितनी ऊँची है, अढ़ाई कोस से अधिक तो नहीं है, और यहां इस को तो तीन कोस ऊँची है। यह सोचते सोचते धवलागिर के सिर पर गर्मी चढ़ गई, बर्फ ढालने लगा, तभी से वह सिर पर बर्फ रक्खे हैं, इत्यादि इत्यादि—

पर भाग के दोष से आसमानी विधवा थी। आसमानी ने दिग्गज की कुटी में आकर देखा कि कुटी का द्वार बन्द है, भीतर दिया जल रहा है, पुकारा—"महाराज जी !"

किसी ने उत्तर न दिया ।

"अजी महाराज जी !"

कुछ उत्तर नहीं ।

"मर निगोड़े क्या कर रहा है ?—अजी रसिकराज रसोपाध्याय महाराज जी !"

कुछ भी उत्तर नहीं ।

आसमानी ने कुटी के किवाड़ के छेद से झांक कर देखा, ब्राह्मणदेव भोजन करने बैठे हैं, इसी से नहीं बोलते, क्योंकि बोलने पीछे फिर यह ब्राह्मण खाते नहीं । आसमानी ने सोचा—"इस की निष्ठा को तो देखें कि बोलने पर फिर भोजन करनी है कि नहीं ।"

"अजी रसिकराज जी !"

उत्तर नहीं ।

"अजी रसराज !"

उत्तर "हूं"

"इस ने मुंह में भात भरकर उत्तर दिया है, इस से कुछ बोला तो नहीं ।" यह सोचकर आसमानी ने फिर कहा—"अजी रसमाणिक्य !"

उत्तर "हूं हूं"

आ०—अजी ! दो दो बातें करलो, पीछे खाया करना ।

उत्तर "हूं ऊं हूं"

आ०—छि ! ब्राह्मण होकर यह काम—आज हम स्वामी जी महाराज से कहे देती हैं ; घर के भीतर और कौन है ?"

ब्राह्मण शङ्कित हो कर सूने घर में चारों ओर देखने लगा, किसी को न देखा, फिर खाने लगा।

आसमानी ने फिर कहा—

"हैं, फिर खाते हो? बोलकर फिर खाते हो?"

दि०—कहां हम कब बोले?

आसमानी खिलखिलाकर हंस पड़ी, और कहा—"यह क्या बोले?"

दि०—ठीक ठीक, अच्छा तो अब न खायंगे।

आ०—अच्छा उठ कर किवाड़ खोल दो।

आसमानी ने किवाड़ के छेद से देखा कि सचमुच ब्राह्मण थाली को छोड़ कर उठा, उस ने कहा-"नहीं नहीं, आगे का भात खाकर उठना।"

दि०—अब न खायंगे, अब बोल चुके।

आसमानी—यह क्या? जो तुम न खाओ तो हमारा मथा खाओ।

दि०—राधाकृष्ण! बोलने पीछे फिर क्या भोजन करना होता है?

आसमानी—ठीक है, तो फिर हम जाती हैं, तुम से बहुत सी अपने मन की बात कहनी थी, कुछ भी न कह सकी। अच्छा अब जाती हैं।

दि०—नहीं नहीं हमारी आसमान, तुम रूठो मत यह लो हम खाते हैं।

ब्राह्मण फिर खानेलगा। दो तीन ग्रास खाने पर आसमानी ने कहा—"उठो अब हो चुका, किवाड़ खोलो।

दि०—यह आगे का खा लें।

आ०—तुम्हारा पेट तो कभी भरता नहीं। उठो, नहीं तो फिर बोलने पर तुम ने भोजन किया है यह सब से कह दूंगी।

दि०—अः लेव हम उठते हैं।

उदासी के साथ थाली छोड़ कर ब्राह्मण ने, गंडूष करके उठ कर द्वार खोल दिया।

त्रयोदश परिच्छेद।

आसमानी का प्रेम।

द्वार खुलने पर आसमानी के प्रवेश करते ही दिग्गज को जान पड़ा मानो प्रणयिनी आई, इस की सरस अभ्यर्थना करनी चाहिये; इस लिये आदरपूर्वक हाथ आगे करके बोला—"ओं आयाहि वरदे देवि!"

आसमानी ने कहा—"यह कविता तो बड़ी ही सरस है। कहां से पाया?"

दि०—तुम्हारे ही लिये तो आज बना रक्खी थी।

आ०—तुम्हारा नाम रसिकराज झूठ थोड़े ही रक्खा है!

दि०—सुन्दरी ! तुम बैठो, हम ज़रा हाथ धो लें।

आसमानी ने मन में कहा—"बस इतने ही पर तुम हाथ धोओगे ? अरे हम अभी तुम्हें वही जूठा खिलावेंगी" प्रकाश में कहा—"यह क्यों, अभी क्यों हाथ धोते हो ? खा तो लेव।"

गजपति ने कहा—"भला यह कैसे हो सकता है ? थाली से उठ कर अब फिर कैसे भोजन करें ?"

आ०—क्यों ? अन्न सब पड़ा है, क्या भूखे ही रहोगे ?

दिग्गज ने उदासी से कहा—"क्या करें, तुम ने जल्दी मचाई" यह कह कर सतृष्ण नयन से थाली की ओर देखने लगा।

आसमानी ने कहा—"नहीं, तुम्हें खाना होगा।"

दि०—राधाकृष्ण ! गंडूष कर चुके, अब कैसे खायँ !

आ०—"न क्यों खाओगे ? तुम्हें हमारा जूठा खाना होगा।" यह कह कर आसमानी ने थाली में से उठा कर एक कौर अपने मुंह में रख लिया।

ब्राह्मण अवाक हो गया।

आसमानी ने जूठा अन्न थाली में छिड़क कर कहा—"लेव, खाओ।"

ब्राह्मण के मुंह से एक अक्षर न निकला।

आ०—सुनो, तुम भोजन करो, हम किसी से न कहेंगी कि तुम ने हमारा जूठा खाया है। जब किसी ने जाना ही नहीं तो फिर कौन दोष है ?"

दि०—यह भी भला हो सकता है ?

पर दिग्गज के पेट में आग लग रही है। दिग्गज मन में सोच रहा था, आसमानी कैसी ही सुन्दरी क्यों न हो, इस समय पृथ्वी में समा जाती तो, यह चुपचाप इस का जूठा अन्न खा कर अपने पेट की ज्वाला तो बुझाते।

आसमानी उस का आशय समझ कर बोली—"चाहे खाना या न खाना पत्तल के पास बैठो।"

दि०—क्यों? इस से क्या होगा?

आ०—हमारा मन। तुम क्या एक इच्छा भी हमारी न पूरी करोगे?

दिग्गज ने कहा—"खाली पत्तल के पास बैठने से क्या होगा? इस में तो कोई दोष नहीं है: अच्छा तुम्हारी बात रख देते हैं।" यह कह कर दिग्गज पण्डित आसमानी के कथनानुसार पत्तल के पास जा बैठा। पट में भूख, सामने अन्न, परन्तु खा नहीं सकते—दिग्गज की आंखें डबडबा आईं।

आसमानी ने कहा—"शूद्र का जूठा छूने से ब्राह्मण को क्या करना होता है?"

पण्डित जी ने कहा—"नहाना होता है।"

आ०—तुम हम को कितना चाहते हो, आज बिना इस के ठिकाना लगाए हम नहीं आने की, क्या तुम हमारे कहने से इस समय रात को नहा सकते हो?

दिग्गज महाशय छोटी सरस आंख बन्द करके, बड़ी नाक टेढ़ी करके, मधुर हंसी हंस कर बोले—"इस में कौन बड़ी बात है? हम अभी नहा सकते हैं।"

आसमानी ने कहा—"हमारा जी चाहता है कि तुम्हारा प्रसाद पावें; तुम अपने हाथ से भात सान देव।"

दिग्गज बोले—"इस में क्या चिन्ता है? नहाने ही से तो शुद्ध हो जायँगे।" यह कह कर पत्तल के शेष भात को इकट्ठा करके सानने लगा।

आसमानी ने कहा—"हम एक कहानी कहती हैं सुनो; जब तक हमारी कहानी पूरी न हो, तुम भात सानते रहना, नहीं तो फिर हम न खायँगी।"

दि०—अच्छा।

आसमानी एक राजा और उस की दो रानियों की कहानी कहने लगी। दिग्गज आंख फाड़ कर उस की ओर देखने और कहानी सुनने लगा—और भात सानने लगा।

सुनते २ दिग्गज का मन आसमानी की कहानी में डूब गया—आसमानी हँसी, चितवन, और नथ के बीच में अटक रहा। भात सानना बन्द हो गया,—हाथ पत्तल ही पर रहा—किन्तु क्षुधा की यातना वैसीही है। जब आसमानी की कहानी खूब जम गई—और दिग्गज का मन उसी में निविष्ट हो गया—उस समय दिग्गज के हाथ ने विश्वासघात किया। पत्तल से लगा हाथ सामने के साने भात का ग्रास उठा कर, चुपचाप दिग्गज के मुँह के पास ले गया; मुख ने खुल कर उसे ले लिया; दांतों ने बिना सोचे उस को चबाना आरम्भ किया; जीभ ने उसे गले के नीचे उतार दिया। पुतली की भांति दिग्गज को कुछ भी ज्ञान न

था। यह देख आसमानी ने खिलखिला कर हँस दिया और बोली—"क्यों बच्चा, हमारा जूठा न खाओगे न ?"

अब दिग्गज को चेत हुई। चटपट और एक ग्रास मुंह में रखकर उसे निगलते २ जूठे हाथ से आसमानी का पैर पकड़ लिया। मुंह चलाते २ कहा—"हमारी रक्षा करो, आसमान! किसी से कहना मत।"

चतुर्दश परिच्छेद।

दिग्गजहरण।

इतने में आकर विमला ने बाहर से किवाड़ खटखटाया। विमला किवाड़ की आड़ से सब देख रही थी। शब्द सुनते ही दिग्गज का मुंह सूख गया! आसमानी ने कहा—"बड़ी आफत भई—विमला आती है, जल्दी से लुक जाओ।"

दिग्गज महाराज रो कर कहने लगे—"कहां लुकायँ ?"

आसमानी ने कहा—"इसी अँधेरे कोने में एक काली हांड़ी सिर पर रख कर बैठ जाव,—अँधेरे में पता न पावैगी।" दिग्गज ऐसा ही करने चला,—आसमानी की बुद्धि की तीक्ष्णता से विस्मित

हो गया। दुर्भाग्यवश शीघ्रता से रहर की दाल की हांड़ी ब्राह्मण ने सिर पर औंधा लिया—उस में आधी हांड़ी दाल थी—दिग्गज ने ज्योंही सिर पर हांड़ी उलटी कि चट उस के सिर से शत धार हो बह चली—बालों के द्वारा अरहर की दाल के स्रोत चले, कंधे, छाती, पीठ और बाहु से होकर, पर्वत से गिरती हुई नदी की भांति तरङ्गित हो कर गिरने लगी, झरने की भांति अरहर की दाल गिराती हुई ऊँची नाक गिरिशृङ्ग के समान शोभायमान होने लगी। विमला भीतर प्रवेश करके दिग्गज की शोभा देखने लगी। दिग्गज विमला को देख कर रोने लगा। वह देख विमला को दया आ गई। विमला ने कहा—"रोओ मत, जो तुम यह सब पत्तल का भात खा जाव तो हम लोग किसी से यह बात प्रकाश न करेंगी।"

ब्राह्मण देवता प्रसन्न हो गये—आनन्द पूर्वक फिर भोजन करने बैठे; जी में तो आया कि देह में लगी अरहर की दाल भी काछ लें पर काछा नहीं, अथवा साहस न हुआ। आसमानी के लिये जो भात लाना था खा गया, और गिरी हुई दाल के लिये परिताप करने लगा। जब ब्राह्मण देव स्थिर हुए विमला ने कहा—"रसिक! एक बड़ी भारी बात है।"

रसिक ने कहा—"क्या?"

वि०—तुम हम लोगों को चाहते हो?

दि०—इस में भी कुछ कहना है?

वि०—हम दोनों को।

दि०—दोनों को।

यह कह कर आसमानी घर लौट आई; विमला और गजपति साथ ही साथ चले। दोनों अँधेरे में अलक्ष भाव से दुर्ग द्वार से बाहर निकले। थोड़ी दूर चलकर दिग्गज ने पूछा—"आसमानी तो अब तक नहीं आई ?"

विमला ने कहा—"जान पड़ता है वह न आ सकेगी। अब उस से क्या काम है ?" रसिकराज चुप रहे। थोड़ी देर पीछे लम्बी सांस लेकर कहा—"हाय पीतल के बर्तन रह गए।"

पंचदश परिच्छेद।

दिग्गज का साहस।

विमला द्रुतगति से गढ़ मान्दारन को पीछे छोड़ चली। रात घोर अँधेरी थी, नक्षत्रों के प्रकाश में सावधानता पूर्वक चलने लगी। मैदान में पहुंच कर विमला कुछ शङ्कित हो गई, उस का साथी चुप चाप पीछे २ चला आता था। ऐसे समय में मनुष्य की बोली सुन कर कुछ साहस होता है, और सुनने को जी भी चाहता है। इसलिए विमला ने गजपति से पूछा—"रसिकरतन! क्या सोच रहे हो ?"

रसिकरतन ने कहा—"वही पीतल के बर्तन।" विमला कुछ उत्तर न देकर मुँह में कपड़ा देकर हँसने लगी।

थोड़ी देर पीछे विमला ने फिर पूछा—"दिग्गज! तुम भूत से डरते हो?"

"राम! राम! राम! राम जी का नाम लेव" यह कह कर दिग्गज और भी विमला के पास दो हाथ खसक गया।

"अन्धा चाहै दो आंखैं।" विमला ने कहा—"इस रास्ते में भूतों का बड़ा उपद्रव है।" दिग्गज ने लपक कर विमला का अञ्चल पकड़ लिया। विमला कहने लगी—

"उस दिन हम लोग शैलेश्वर जी की पूजा करके आती थीं, रास्ते में बर के पेड़ के नीचे एक बड़ी विकट मूर्ति देखी।"

अञ्चल के हिलने से विमला जान गई कि ब्राह्मणदेव थरथर कांप रहे हैं। सोचा कि, अब और बढ़ाने से, ब्राह्मण के पैर भी न उठ सकेंगे अतएव बात पलट कर बोली—"रसिकराज! तुम गाना जानते हो?"

रसिक पुरुष भी कहीं गाने से अनभिज्ञ होते हैं? दिग्गज ने कहा—"जानते क्यों नहीं?"

विमला ने कहा—"एक गीत तो गाओ।"

दिग्गज ने आरम्भ किया।

"ए—हूं—हूं—ऊं—हूं—केहि छिन देख्यो सखी गोपाल।"

मार्ग के किनारे एक गाय सो रही थी, इस अलौकिक शब्द को सुनते ही बड़े वेग से उठ कर भागी।

रसिकराज की रागिनी आगे चली—

"सीस मुकुट कर वेनु बजावत चढ़ि कदम्ब की डाल॥

वाही दिन कुलकानि गँवाई भयो लिख्यो जो भाल।

हँसि कहि ग्वालिन मद को मातो गागरि दयो उछाल ॥१॥"

दिग्गज का गान बन्द हो गया, अकस्मात् उस के कान मोहित हो गए; अमृतमय, मन को पागल करने वाली, अप्सरा हस्तस्थित बीणा शब्द के समान मधुर सङ्गीत ध्वनि, उसके कान में गूंज गई। विमला ने आपही आनन्द में आकर पूर्ण स्वर से गाना आरम्भ कर दिया था।

सूनसान मैदान में आकाश भेद कर सप्तस्वर परिपूर्ण ध्वनि व्याप्त हो गई। शीतल मन्द पवन द्वारा ध्वनि चारों ओर फैल चली।

दिग्गज एकाग्र चित्त हो सुनने लगा। जब विमला चुप हुई, गजपति ने कहा—"और।"

वि०—और क्या ?

दि०—एक गीत और गाओ।

वि०—क्या गावैं ?

दि०—एक खेमटा गाओ।

"अच्छा गाती हूं" कह कर विमला ने फिर गाना आरम्भ किया।

गीत गाते गाते विमला का जान पड़ा कि उसका अञ्चल खिँचा जाता है। पीछे फिर कर देखा कि, गजपति एक बारगी उस के पास सट आया है, प्राण के साथ अञ्चल पकड़ रक्खा है। विमला ने आश्चर्य पूर्वक पूछा—"क्या हुआ ? फिर भूत आया क्या ?"

ब्राह्मण के मुंह से बोली नहीं निकलती; केवल अँगुली से दिखला कर कहा—" यही। "

विमला ध्यान पूर्वक उस ओर देखने लगी। लम्बी लम्बी सांस लेनेका शब्द कान में पड़ा; और उस ओर मार्ग के पास ही कोई पदार्थ दिखाई दिया।

साहस कर के उस के पास जा कर देखा कि एक सुगठित सुसज्जित घोड़ा पड़ा हुआ मृत्युयातना से हांफ रहा है।

विमला आगे चली, सेना का घोड़ा कसा कसाया मुमूर्षु अवस्था में देख कर उसे बड़ी चिन्ता हुई। बड़ी देर तक कुछ न बोली। आध कोस के लगभग चलने पर गजपति ने फिर उस का अंचल खींचा।

विमला ने पूछा—" क्या है ? "

गजपति ने एक वस्तु लेकर दिखाया। विमला ने देख कर कहा—"यह तो सिपाही की पगड़ी है।" विमला फिर चिन्तामग्ना हो गई। मन ही मन सोचने लगी—" जिस का घोड़ा था, पगड़ी भी उसी की होगी। नहीं नहीं, यह तो किसी पैदल सिपाही की पगड़ी है। "

थोड़ी देर पीछे चन्द्रोदय हुआ। विमला और भी चञ्चल हो गई। दिग्गज ने साहस कर के पूछा—" सुन्दरि ! अब चुप क्यों हो ?"

विमला ने कहा—" मार्ग में कुछ चिन्ह देखते हो ?" दिग्गज ध्यानपूर्वक रस्ते को देख कर बोला—" बहुत से घोड़ों के टाप का चिन्ह दिखाई पड़ता है। "

वि०—"बुद्धिमान् हो तो बताओ, कुछ समझे ?"

दि०—नहीं।

वि०—"वहां मरा घोड़ा, फिर सिपाही की पगड़ी, यहां इतने घोड़ों के टाप का चिन्ह, इतने पर भी कुछ नहीं समझा ? हम तुम से क्या कहें—"

दि०—क्या ?

विमला—अभी इधर से बहुत सी सेना गई है।

गजपति ने डर कर कहा—"तो और धीरे धीरे चलो, उन लोगों को खूब आगे बढ़ जाने दो।"

विमला ने हंस कर कहा—"मूर्ख कहीं का! वह लोग आगे क्या बढ़ेंगे। देखते नहीं हो घोड़े के टाप का आगा किधर है? यह सेना गढ़ मान्दारन की ओर गई है।" यह कह कर विमला उदास सी हो गई।

थोड़ी देर में शैलेश्वर के मन्दिर की ध्वजा दिखाई पड़ी। विमला ने सोचा—राजकुमार के साथ ब्राह्मण के सामना कराने से कुछ प्रयोजन नहीं है, वरन इस में अनिष्ट होगा। अब कैसे इसे बिदा करें यह सोच रही थी। गजपति ने आप ही इस की सूचना कर दी।

ब्राह्मण देवता ने फिर विमला के पीठ के पास आकर अञ्चल पकड़ लिया। विमला ने पूछा—"अब क्या हुआ ?"

ब्राह्मण ने धीरे से पूछा—"वह कितनी दूर है ?"

वि०—क्या कितनी दूर है ?"

दि०—वही बर का पेड़।

वि०—कौन बर का पेड़ ?

दि०—जहां तुमलोगों ने उस दिन देखा था।

वि०—क्या देखा था ?

दि०—रात को उस का नाम नहीं लेना।

विमला ने समझा यही सुयोग है, कहा—"ओह !"

ब्राह्मण और भी भयभीत होकर बोला—"अरे क्या हुआ ?"

विमला ने धीरे से शैलेश्वर के पास के बर के वृक्ष को दिखा कर कहा—"वह यही बर का पेड़ है।"

दिग्गज हिल न सका, चलने की शक्ति जाती रही, पीपर के पत्ते की भांति कांपने लगा।

विमला ने कहा—"आओ।"

ब्राह्मण कांपते कांपते बोला—"अब तो हम नहीं चल सकते।"

विमला ने कहा—"हमें भी डर लगता है।"

यह सुनते ही ब्राह्मण फिरा और भागने का उद्योग करने लगा।

विमला ने वृक्ष की ओर फिर कर देखा, वृक्ष के पास कोई उजला पदार्थ है। वह जानती थी कि इसी बर के नीचे शैलेश्वर का सांड़ सोया करता है, परन्तु गजपति से कहा—"गजपति ! भगवान् का नाम लेव, देखो, पेड़ के नीचे क्या दिखाई पड़ता है ?"

"अरे बाप रे बाप !" कह कर दिग्गज एक बारगी चम्पत हुआ। लंबे लंबे डेग भरता पल भर में आध कोस जा पहुँचा।

विमला गजपति का स्वभाव जानती थी, उस ने समझ लिया· अब यह एक दम दुर्गद्वार पर आकर दम लेगा। अब निश्चिन्त हो कर विमला मन्दिर की ओर चली।

विमला सब आगा पीछा सोच कर आई थी; केवल एक बात नहीं सोचा था। राजपुत्र मन्दिर में आए तो होंगे ? मन में यह सन्देह उठते ही विमला को बड़ा क्लेश हुआ। मन में विचार कर देखा, कि राजपुत्र ने आने के लिए निश्चय तो कहा नहीं था, यही कहा था कि "यहीं हम से भेंट होगी, जो यहां न मिलैं तो समझना कि भेंट न होगी," तो फिर तो न आने की भी सम्भावना है।

कहीं न आए हों, तो इतना क्लेश व्यर्थ हुआ। विमला दुखी हो कर मन ही मन कहने लगी, "यह पहिले ही से क्यों न सोच लिया ?

ब्राह्मण को क्यों भगा दिया ? इतनी रात्त को अकेली कैसे लौटेंगी ? शैलेश्वर ! जो तुम्हारी इच्छा।"

बड़ के वृत्त के नीचे से हो कर शैलेश्वर के मन्दिर में जाना होता है। विमला ने वृत्त के नीचे पहुंच कर देखा वहां सांड़ नहीं है, वृत्त के नीचे जो पदार्थ देखा था अब वहां नहीं है।

विमला कुछ विस्मित हुई। सांढ़ कहीं गया होता तो इसी मैदान में दिखाई देता।

विमला ने वृत्तमूल में विशेष ध्यान से देखा; जान पड़ा कि वृत्त के पीछे किसी मनुष्य के सुफैद कपड़े की आभा मात्र दिखाई

देती है । विमला और भी डरी । अत्यंत शीघ्रता से मन्दिर की ओर चली, और बलपूर्वक किवाड़ खटखटाया ।

किवाड़ बंद है ।

भीतर से गंभीर स्वर से प्रश्न हुआ-"कौन है ?"

शून्य मन्दिर के भीतर से गंभीर स्वर से प्रतिध्वनित हुआ-"कौन है ?"

विमला ने बड़ा साहस कर के कहा-"हम थकी हुई एक स्त्री हैं।"

किवाड़ खुल गया ।

देखा, मन्दिर में दीपक जल रहा है, सामने हाथ में तलवार लिए एक दीर्घाकार पुरुष खड़ा है ।

विमला ने देखते ही पहिचान लिया-"कुमार जगत सिंह-"

षोड़श परिच्छेद ।

शैलेश्वर में भेंट ।

विमला ने मन्दिर में प्रवेश कर के पहिले थोड़ी देर तक बैठ कर विश्राम किया, फिर झुक कर शैलेश्वर को प्रणाम कर के युवराज को प्रणाम किया । कुछ देर तक दोनों चुप रहे । कौन, क्या, कह कर अपने मन का भाव प्रगट करैं ? दोनों बड़े संकट में पड़े । पहिले क्या कह कर आरम्भ करैं ?

विमला इस विषय की हार जीत में पण्डिता थी, पहिले उसी ने मुस्किरा कर कहा—"युवराज! आज शैलेश्वर की कृपा से आप का भी दर्शन हो गया, इस मैदान में इतनी रात को अकेली आने में डर गई थी, अब यहां आप के दर्शन से साहस हुआ।"

युवराज ने कहा—"तुमलोगों के यहां सब मंगल तो है?"

विमला का अभिप्राय था कि, पहिले देखें कि राजकुमार यथार्थ में तिलोत्तमा से अनुरक्त हैं या नहीं, तब फिर दूसरी बात होगी। यह सोचकर बोली—"जिस में मंगल हो, इसी की प्रार्थना करने के लिए ही तो शैलेश्वर की पूजा करने आई। पर जान पड़ता है कि आप ही की पूजा से शैलेश्वर जी प्रसन्न हैं, हमारी पूजा न ग्रहण करेंगे। आज्ञा दीजिए तो अब जायं।"

युव०—जाओ, पर तुम्हारा अकेले जाना उचित नहीं है, चलो, हम तुम्हें पहुँचा आवें।

विमला ने समझा कि राजकुमार ने जन्म भर केवल अस्त्र-शिक्षा ही नहीं किया है। विमला ने उत्तर दिया—"अकेली जाना अनुचित क्यों है?"

युव०—मार्ग में बहुत डर है।

वि०—तो हम महाराज मान सिंह के पास जायं?

युवराज ने पूछा—"क्यों?"

वि०—क्यों? उन के पास नालिश करनी है, उन्हों ने जिसे सेनापति नियत किया है, उस के द्वारा हम लोगों के मार्ग का डर नहीं दूर होता; वह शत्रुओं को मारने में समर्थ नहीं है।

राजपुत्र ने हंसकर कहा-" सेनापति उत्तर देंगे, कि शत्रुदमन करना देवताओं को असाध्य है, तो मनुष्य की कौन गिनती। जैसे स्वयं महादेव जी ने मन्मथ शत्रु को भस्म किया था। आज एक पत्त हुआ उसी मन्मथ ने उन्हीं के इस मन्दिर में बड़ा उपद्रव मचाया था।"

विमला ने मुस्किरा कर कहा-"किस पर उपद्रव मचाया था ? "

युवराज ने कहा—"सेनापति ही के ऊपर। "

विमला ने कहा-" महाराज ऐसी असंभव बात कभी विश्वास न करेंगे।"

युव०—हमारे गवाह हैं।

वि०— महाशय ! ऐसा कौन गवाह है ?

युव०—हे सच्चरित्रे—

राजपुत्र की बात पूरी भी न होने पाई थी कि विमला बोल उठी—"दासी अत्यंत दुश्चरित्रा है। हमें विमला कह कर पुकारा कोजिए।"

राजपुत्र ने कहा—" हमारी गवाह विमला ही है।"

वि०—विमला ऐसी गवाही न देगी।

युव०-यह सम्भव है, जो एक ही पत्त में अपनी प्रतिज्ञा भूल जा सकती है, वह कभी सच्ची गवाही दे सकती है ?

वि०-महाशय ! क्या प्रतिज्ञा की थी स्मरण कर दीजिए।

युव०-अपनी सखी के परिचय देने की।

विमला ने एकाएकी व्यंग प्रियता छोड़ दिया, गंभीर भाव से कहा—"युवराज! परिचय देने में संकोच होता है। परिचय पाने से कहीं आप दुखी न हों?"

राजपुत्र कुछ देर तक चिन्ता करते रहे, उन का भी व्यङ्गात्मक भाव दूर हुआ; चिन्ता करके कहा—"विमले! क्या यथार्थ में परिचय पाना कोई कारण दुख का है?"

विमला ने कहा—"है।"

राजपुत्र फिर चिन्ता करने लगे; थोड़ी देर पीछे कहा—"जो हो, तुम हमारी इच्छा पूरी करो, जो असह्य उत्कण्ठा हम सह रहे हैं, उस से बढ़ कर दुखकर कोई बात नहीं हो सकती। तुम जो आशंका कर रही हो, यदि वह सत्य हो तो भी वह इस यंत्रणा की अपेक्षा अच्छी ही होगी। अंतः करण को प्रबोध देने की एक बात तो मिले। विमले! हम केवल कौतूहल के लिए तुम से मिलने नहीं आए हैं; इस समय हमें कौतूहल का अवकाश नहीं है। आज आधे महीने से घोड़े की पीठ के सिवाय, दूसरी शय्या पर पीठ भी नहीं लगाई है। हमारा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है, इसी से आए हैं।"

विमला यही सुनने के लिये तो इतने फेरफार कर रही थी, और भी निश्चय करने के अभिप्राय से कहा—"युवराज! आप नीतिशास्त्र में विलक्षण हैं, विचार कर देखिए, इस युद्धकाल में आप को दुष्प्राप्य रमणी की ओर मन लगाना उचित है? मैं दोनों के मंगल के हेतु कहती हूं, आप हमारी सखी को भुलाने का यत्न कीजिए। युद्ध के उत्साह से अवश्य कृतकार्य हूजिएगा।"

युवराज के ओठों पर मनस्ताप सूचक हँसी दिखाई दी; बोले, "किसे भुलावैं? तुम्हारी सखी का रूप एक ही वेर देखने से हमारे हृदय में ऐसा दृढ़ अंकित हो गया है कि बिना इस हृदय के दग्ध हुए वह मिटने का नहीं। लोग हमारे हृदय को पाषाण कहते हैं, पाषाण पर जो मूर्ति अंकित हो जाती है वह विना पाषाण के नष्ट हुए, कभी नहीं मिटती। युद्ध की बात क्या कहती हो, विमले! हम तुम्हारी सखी को देखने के पीछे बराबर युद्ध ही में लगे रहे, परन्तु क्या रणक्षेत्र में, क्या शिबिर में, एक पल भी वह मुख नहीं भूल सके; जिस समय सिर काटने के लिए पठान ने तलवार उठाई है उस समय पहिले यही बात उदय हुई कि इस समय मरने से अब: वह मुख न देख सकेंगे, एक बेर के सिवाय फिर भेंट भी नहीं हुई। विमले! कहां जाने से तुम्हारी सखी का दर्शन होगा?"

अब विमला और क्या सुनैगी! कहा—"गढ़ मान्दारन में हमारी सखी से भेंट होगी। सुन्दरी तिलोत्तमा वीरेन्द्र सिंह की कन्या है।"

जगत सिंह को जान पड़ा मानो उसे काल सर्प डस गया हो। तलवार पर बोझ देकर सिर नीचा किए खड़े रहे। बहुत देर पीछे दीर्घ निश्वास लेकर बोले—"तुम्हारी बात सच हुई। तिलोत्तमा हमारी नहीं हो सकती। हम युद्धक्षेत्र में जाते हैं; शत्रु-रक्त में अपना सुखाभिलाष विसर्जन कर देंगे।"

विमला राजपुत्र की कातरता देखकर बोली—"युवराज! यदि स्नेह का पुरस्कार मिलता हो, तो तिलोत्तमा को पाने के

योग्य आप ही हैं। एक बारगी ऐसे निराश क्यों होते हो ? आज दैव निर्दय हैं, कल्ह सदय हो सकते हैं।"

आशा मधुरभाषिणी है, अत्यन्त दुःख के दिन में मनुष्य के कान में धीरे धीरे कह देती है-"आंधी पानी चिरस्थाई नहीं है; क्यों दुखित होते हो ? हमारी बात सुनो।" विमला के मुख से आशा ने कहलाया—"क्यों दुखित होते हो ? हमारी बात सुनो।"

जगत सिंह ने आशा की बात सुनी। ईश्वर की इच्छा को कौन जान सकता है ? विधाता का लेख कौन पढ़ सकता है ? इस संसार में अनहोनी क्या है ? इस संसार में कौन सी अनहोनी घटना नहीं हुई है ?

राजपुत्र ने आशा की बात सुनी, बोले-"जो हो, आज हमारा मन अत्यन्त चंचल हो रहा है; कर्तव्याकर्तव्य कुछ निश्चय नहीं कर सकते। जो कुछ भाग्य में होगा होहीगा, विधाता का लिखा कौन मिटा सकता है ? इस समय हम केवल अपने मन की बात कहते हैं। शैलेश्वर जी के सामने हम प्रतिज्ञा करते हैं कि तिलोत्तमा छोड़ और किसी की कभी चाहना न करैंगे। तुम से हमारी यही भिक्षा है कि तुम हमारी सब बात अपनी सखी के सामने कहना। और कहना कि हम केवल उन के एक ही वेर और दर्शन के भिखारी हैं, प्रतिज्ञा करते हैं दूसरी वेर यह भिक्षा कभी न चाहैंगे।"

विमला का मुख हर्ष से प्रफुलित हो गया। उस ने कहा-"हमारी सखी का उत्तर आप कैसे पावैंगे ?"

युवराज ने कहा—"तुम्हें बेर बेर तो हम कष्ट नहीं दे सकते, पर यदि तुम एकबेर और इस मन्दिर में हम से मिलोगी, तो जन्म भर के लिए हम तुम्हारे हाथ बिके रहेंगे। जगतसिंह द्वारा कभी न कभी प्रत्युपकार होना सम्भव है।"

विमला ने कहा—"युवराज! मैं आप की आज्ञाकारिणी हूं; परंतु अकेली रात के समय इस रास्ते में आने से डर लगता है। प्रतिज्ञा पूरी न करना ठीक नहीं, इसी से आज आई। इस समय यह देश शत्रु से घिरा है, फिर आने में डर लगैगा।"

राजपुत्र ने कुछ देर चिन्ता करके कहा—"जो कोई हानि न समझो तो हम तुम्हारे साथ गढ़ मान्दारन चलैं। हम कहीं पर अपेक्षा करेंगे, तुम हमारा प्रत्युत्तर ला देना।"

विमला ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा, तो चलिए।"

दोनों मंदिर से बाहर निकलने के लिए उठे, कि मन्दिर के बाहर सावधानता से मनुष्य के पैर रखने की आहट मिली।

राजपुत्र ने कुछ विस्मित होकर विमला से पूछा—"कोई तुम्हारे साथ भी है?"

विमला ने कहा—"नहीं।"

"तब फिर किस के पैर की आहट मिली थी? हमें सन्देह होता है, किसी ने छिपकर हमलोगों की बातें सुनी हैं।"

यह कहकर राजपुत्र ने बाहर आकर मन्दिर के चारों ओर घूमकर देखा, कहीं किसी को न पाया।

सप्तदशपरिच्छेद।

वीरपंचमी।

दोनों शैलेश्वर को प्रणाम कर के डरते हुए गढ़ मान्दारन की ओर चले। कुछ दूर चुप चाप गए। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर पहिले राजकुमार ही ने पूछा—"विमले! हमें एक बात में बड़ा सन्देह है, हम नहीं जानते तुम सुनकर क्या कहोगी।"

विमला ने कहा—"क्या?"

जगत०—हमें निश्चय होता है, कि तुम कदापि परिचारिका नहीं हो।

विमला ने मुस्किरा के कहा—"क्यों आप को यह सन्देह हुआ?"

जगत०—वीरेन्द्रसिंह की कन्या, अम्बरपति की पुत्रवधू नहीं हो सकती, इस का कुछ विशेष कारण है। यह अत्यन्त गुप्त बात है; परिचारिका होती तो यह कथा तुम कैसे जानती?

विमला ने दीर्घ निश्वास लेकर किंचित् कातर स्वर से कहा—"आप ने ठीक अनुमान किया है, यथार्थ में हम परिचारिका नहीं हैं। दुर्भाग्यवश परिचारिका की भांति रहती हैं। भाग्यही का दोष क्यों दें? हमारा भाग्य कुछ बुरा नहीं है।"

राजकुमार ने समझा—इस बात से विमला के मन में कुछ परिताप उदय हुआ है, अतएव इस विषय में और कुछ न कहा। विमला ने आप ही कहा—"युवराज ! आप को परिचय देंगी; परंतु इस समय नहीं। यह शब्द काहे का ? पीछे कोई आ रहा है ?"

इस समय पीछे पीछे मनुष्य की पदध्वनि स्पष्ट सुनाई दी। ऐसा भी जान पड़ा कि दो मनुष्य कुछ कान में बात कर रहे हैं। उस समय मन्दिर से कोई आध कोस आए होंगे। राजपुत्र ने कहा—"हमें बड़ा संदेह होता है, ठहरो, हम देख तो आवें।"

यह कहकर पीछे लौट कर थोड़ी दूर तक राजकुमार ने देखा और मार्ग के इधर उधर भी ढूंढ़ा; कहीं कोई न दिखाई दिया। लौटकर विमला से कहा—"हमें संदेह होता है कोई हमलोगों का पीछा किए है; सावधानी से बात करनी चाहिए।"

अब दोनों बहुत धीरे धीरे बात करते चले। क्रमशः गढ़मान्दारन गांव में पहुँचकर दुर्गद्वार के सामने उपस्थित हुए। राजपुत्र ने पूछा—"इस समय दुर्ग में कैसे जाओगी? इतनी रात गई, फाटक तो अवश्य ही बंद हो गया होगा ?"

विमला ने कहा—"इस की चिंता न कीजिए; इस का उपाय करके तब घर से बाहर निकली थी।"

राजकुमार ने हंसकर पूछा—"गुप्तद्वार है ?"

विमला ने भी हंसकर कहा—"जहां चोर, वहीं सेंध।"

थोड़ी देर पीछे फिर राजपुत्र ने कहा—"अब हमारे आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं, हम यहीं इस आम्रकानन में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे; तुम हमारी ओर से निश्चल होकर अपनी सखी

से बिनती करना, एक पक्ष पीछे हो, एक महीना पीछे हो, एक बेर उन का दर्शन और करके अपनी आंख ठंढी करें।"

विमला ने कहा—"यह आम्रकानन निराला स्थान नहीं है, हमारे साथ आइए।"

जगत०—कितनी दूर जाना होगा?

वि०—दुर्ग के भीतर चलिए।

राजकुमार ने सोच कर कहा—"विमला, यह उचित नहीं है; हम बिना दुर्गस्वामी की अनुमति के दुर्ग में न जायँगे।"

विमला ने कहा—"चिन्ता किस बात की है?"

राजकुमार ने गर्वित भाव से कहा—"राजपूत लोग कहीं जाने में चिन्ता नहीं करते। परन्तु विचार करके देखो क्या अम्बरपति के पुत्र को यही उचित है कि दुर्गस्वामी के अनजान में चोर की भांति दुर्ग में प्रवेश करै?"

विमला ने कहा—"मैं आप को बुला कर लिवाए चलती हूं।"

राजकुमार ने कहा—"यह न मन में लाना कि हम तुम्हें परिचारिका समझ कर अवज्ञा करते हैं, पर तुम्हीं कहो, हमें दुर्ग में बुला कर लिवा जाने का तुम्हें क्या अधिकार है?"

विमला ने थोड़ी देर सोच कर कहा—"हमें क्या अधिकार है यह बिना सुने आप दुर्ग में न जायँगे?"

उत्तर—"कदापि न जायँगे।"

विमलाने झुककर राजपुत्र के कान में कुछ कह दिया। राजपुत्र ने कहा—"चलिए।"

विमला ने कहा—"युवराज ! मैं दासी हूं, मुझे "चल" कहा कीजिए।"

युवराज ने कहा—"अच्छा यही सही।"

जिस राजमार्ग से विमला युवराज को लिवाए जाती थी, उस से दुर्गद्वार की ओर जाना होता है। दुर्ग के पास आम्रकानन है। सिंह द्वार से यह आम्रकानन नहीं दिखाई देता। इस मार्ग से होकर जिधर दामोदर दुर्गान्तःपुर के पीछे बहती है उधर जाना हो तो इसी आम्रकानन के बीच से जाना पड़ता है। विमला ने राजमार्ग छोड़कर इसी आम्रकानन में प्रवेश किया।

आम्रकानन में प्रवेश के समय, दोनों ने फिर वैसेही पत्तों की खड़खड़ाहट के साथ मनुष्य के पैर की सी आहट पाई।

विमला ने कहा—"फिर !"

राजपुत्र ने कहा—"तुम तनिक खड़ी रहो, हम देख आवें।"

राजपुत्र तलवार निकाल कर जिधर से शब्द हुआ था उधर ही गए; पर कुछ दिखाई न दिया। आम्रकानन में नाना प्रकार के जङ्गली लतादि के बढ़ जाने से बन ऐसा हो गया था और वृक्षों की छाया से बन में ऐसा अँधेरा हो गया था कि राजपुत्र जहां जाते वहां से आगे का कुछ न दिखाई पड़ता। राजपुत्र ने यह भी समझा—किसी पशु के पैर से लग कर सूखे पत्ते खड़खड़ाए होंगे। जो हो, सन्देह मिटाना आवश्यक जानकर राजकुमार तलवार हाथ में लिए ही एक आम के पेड़ पर चढ़ गए। वृक्ष की फुनगी पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगे, बहुत देर तक देखते देखते, देखा कि एक बड़े आम के पेड़ की अँधेरी शाखाओं में दो

मनुष्य बैठे हैं। उन लोगों की पगड़ी पर चन्द्रकिरण पड़ती थी, केवल वही दिखाई पड़ती, शरीर छाया में छिपा था। राजपुत्र ने उत्तम रूप से ध्यान देकर देखा कि सिर पर पगड़ी पहिरे मनुष्य ही हैं, इस में सन्देह नहीं। उन्हों ने उत्तम रीति से वृक्ष को लक्ष कर रक्खा जिस में फिर आने से भ्रम न हो। फिर धीरे धीरे उतर कर निःशब्द विमला के पास आए। जो देखा वह विमला से वर्णन करके कहा—"इस समय कहीं दो बर्छी होते ?"

विमला ने कहा—"बर्छी लेकर क्या कीजिएगा ?"

जगत०—उस से जान पड़ता कि ये लोग कौन हैं। लक्षण अच्छा नहीं जान पड़ता, पगड़ी देख कर सन्देह होता है कि दुष्ट पठान लोग किसी बुरे अभिप्राय से हम लोगों के पीछे लगे हैं।

तत्क्षण विमला को पथ पार्श्वस्थ मरा हुआ घोड़ा, पगड़ी और सवारों के घोड़ों के पैर के चिन्ह स्मरण हुए। उस ने कहा, "आप दम भर यहां ठहरिए, मैं अभी दुर्ग में से दो बर्छी लाती हूं।"

यह कह कर विमला झट पट दुर्ग के पास गई। जिस कोठरी में बैठ कर उस रात को शृंगार किया था, उस के नीचे की कोठरी में एक खिड़की आम्रकानन की ओर थी।

विमला ने अंचल से कुंजी खोल कर उस की कल में फिराया, फिर खिड़की के किवाड़ को द्वार की ओर खींच दिया, शिल्प-कौशल से किवाड़, चौकठ आदि सब द्वार के बीच के रंध्र में घुस गया, विमला के भीतर जाने के लिए मार्ग खुल गया। विमला ने कोठरी में प्रवेश कर के खिड़की का किवाड़, चौकठ पकड़ कर

खींच दिया। खिड़की फिर पहिले की भांति बंद हो गई। किवाड़ के भीतरी ओर पूर्ववत् कुंजी की कल थी, विमला ने अंचल की चाभी कल में लगाई। किवाड़ अपने स्थान पर दृढ़ हो गया, बाहर से खुलने की सम्भावना न रही।

विमला झटपट दुर्ग के सिलहखाने में गई। सिलहखाने के पहरी से कहा—"हम तुम से जो वस्तु मांगें वह किसी से कहना मत, हमें दो बर्छी देव, हम अभी लौटा देंगी।"

पहरी ने विस्मित हो कर पूछा—"माता, तुम बर्छी लेकर क्या करोगी ?"

प्रत्युत्पन्नमति विमला ने कहा—"आज हमारे यहां वीरपंचमी का व्रत है। व्रत के करने से बीरपुत्र होता है, इस में रात को अस्त्रपूजा करना होता है, हमें पुत्र की कामना है, यह किसी के सामने प्रकाश मत करना।"

पहरी को जैसा समझाया वह वैसा ही समझ गया। दुर्ग के सभी भृत्य विमला के आज्ञाकारी थे, इस से फिर कुछ न कहा और दो तेज़ बर्छी दे दिए।

विमला बर्छी लेकर झटपट खिड़की के पास आई और पूर्ववत् द्वार खोला, और बर्छी लिए बाहर निकल कर जगत सिंह के पास गई।

व्यस्तता के कारण हो, वा यह पास ही तो रहेंगी, और अभी तो लौटना है, इसी विश्वास से निश्चिन्त हो कर ही, विमला बाहर निकलने के समय द्वार पूर्ववत् बंद नहीं कर गई। इसी से एक भारी घटना उपस्थित हुई। खिड़की के अत्यंत निकट एक

आम का पेड़ था, उस की आड़ में एक शस्त्रधारी पुरुष खड़ा था, वह विमला की यह भूल देखता था, जबतक विमला आंख की ओट नहीं हुई तबतक तो वह वहीं आड़ में रहा, विमला के अदृश्य होते ही वह पेड़ के नीचे शब्द करनेवाला जूता छोड़ कर, धीरे धीरे खिड़की के पास आया। पहिले खुले हुए द्वार से कोठरी के भीतर देखा, यह देख कर कि कोई नहीं है चुपचाप भीतर घुस गया, और उस के द्वार से हो कर अंतःपुर में चला गया।

इधर राजपुत्र विमला से बर्छी लेकर फिर पेड़ पर चढ़े, और लक्ष किए हुए पेड़ पर दृष्टिपात किया, देखा कि अब केवल एक ही पगड़ी भर दिखाई पड़ती है, दूसरा वहां नहीं है। राजपुत्र ने एक बर्छी बांए हाथ में रक्खा, दूसरे बर्छे को दाहिने हाथ में लेकर वृक्षस्थ पगड़ी पर लक्ष कर के, विशालबाहु से बलपूर्वक बर्छी फेंका, तुरंत पहिले तो पेड़ के पत्ते बड़े वेग से मरमरा उठे, फिर पेड़ पर से किसी बड़े पदार्थ के गिरने का शब्द हुआ। अब पगड़ी पेड़ पर नहीं दिखाई पड़ती। राजपुत्र ने देखा कि उन के अव्यर्थ लक्ष से पगड़ीवाला मनुष्य वृक्षशाखा से भूमि पर गिर पड़ा।

जगत सिंह झटपट वृक्ष से उतर कर जहां आहत मनुष्य गिरा था वहां आए, देखा कि एक सैनिक मुसल्मान सशस्त्र मृतवत् हो कर पड़ा है। बर्छी उस के आंख के पास विद्ध हुआ है।

राजपुत्र ने मृतवत् देह को भली भांति देख कर जाना कि वह मर ही गया है। बर्छी आंख के पास से मस्तक के पार हो गया है। मृतक व्यक्ति के कवच में एक पत्र था, उस का एक कोना निकला

हुआ था। जगत सिंह उस पत्र को लेकर चांदनी में आए और पाठ किया। उस में यही लिखा था—

"कुतलू खां के आज्ञाकारी लोग इस लेख को देखते ही लेख रखने वाले मनुष्य की आज्ञा प्रतिपालन करें।"

"कुतलू खां"

विमला केवल शब्द सुनती थी, विशेष रूप से कुछ न जान सकी। राजकुमार ने उस के पास आकर सब वृत्तान्त कहा। विमला ने सुन कर कहा, "युवराज! जो मैं इतना जानती तो कभी बर्छी न ला देती, तो मैं बड़ी पापिन हूं, आज जो कर्म किया है उसका प्रायश्चित्त बहुत काल तक भी न होगा।"

राजपुत्र ने कहा—

"शत्रुबध से क्यों क्षोभ करती हो? शत्रुबध तो धर्म है।"

विमला ने कहा—"हम लोग तो स्त्री हैं, योद्धा लोग इस भांति विचार करें।"

कुछ देर पीछे विमला ने कहा—"राजकुमार! अब देर करने में अनिष्ट होगा, शीघ्र ही दुर्ग में चलिए, मैं किवाड़ खुला छोड़ आई हूं।"

दोनों लपक कर दुर्ग के पास आए, आगे विमला पीछे राजपुत्र ने प्रवेश किया। प्रवेश के समय युवराज की छाती धड़कने और पैर कांपने लगे। शत सहस्र सैनिकों के आगे जिन के सिर का एक बाल भी नहीं गिरा उनको इस सुख के घर में प्रवेश करने के समय हृत्कम्प क्यों हुआ?

विमला ने पूर्ववत् खिड़की का द्वार बन्द कर दिया। फिर राजपुत्र को अपने सोने के घर में ले जाकर कहा—"मैं आती हूं, आप एक क्षण भर पलङ्ग पर बैठ जाइए। यदि कोई चिन्ता न हो तो विचार देखिए कि भगवान का आसन केवल एक वटपत्र है।"

विमला ने जाने के क्षण ही भर के पीछे कक्षद्वार खोला, और उसी कक्ष में से राजकुमार को सम्बोधन करके कहा—"युवराज ! इधर आकर एक निवेदन सुन लीजिए।"

युवराज का हृदय फिर कांपने लगा; कहीं कोरा जवाब न मिला हो ! पलङ्ग से उठ कर दूसरे कक्ष में विमला के पास गए।

विमला चटपट बिजली की नाईं वहां से खसक गई। युवराज ने देखा सुवासित कक्ष है, चांदी का दीपक जल रहा है, कक्ष के कोने में एक घूंघटवाली स्त्री बैठी है—वह स्त्री तिलोत्तमा ही है।

अष्टादश परिच्छेद ।

चतुर के साथ चतुर ।

विमला आकर अपने कक्ष में पलङ्ग पर बैठी। विमला का मुंह प्रफुल्लित हुआ जाता था। एक प्रकार से उस ने मनोरथ सिद्ध कर लिया। कक्ष में दीपक जल रहा है, सामने मुकुर रक्खा है, शृङ्गार जैसा संध्या को था वैसा ही बना है। विमला थोड़ी देर तक दर्पण में अपनी छाया देखती रही। संध्या को जैसे कुटिल केश सँवारे थे,

वह वैसे ही बने हैं, विशाल नेत्रों में वैसी ही काजल की रेखा है, अधर पर वैसी ही पान की ललाई है ।

कर्णाभरण पीवरांस संसक्त हिल रहा है; विमला तकिया पर पीठ लगा कर अर्द्ध शयन और अर्द्ध उपवेशन भाव से बैठी है; दर्पण में अपना लावण्य देखकर हँसी । वह यह सोच कर हँसी कि दिग्गज पण्डित निष्कारण गृहत्यागी नहीं होना चाहता था ।

विमला जगतसिंह की राह देख रही है कि इतने ही में आम्र-कानन से गम्भीर तुरही का शब्द सुनाई दिया । विमला चमक उठी, और डर गई, सिंह द्वार छोड़ कर आम्रकानन में तो कभी तुरही नहीं बजती, और फिर इतनी रात के समय क्यों तुरही बजैगी ? विशेष कर उसी रात में मन्दिर जाते और आते जो जो देखा था, सब स्मरण हुआ । विमला उसी समय समझ गई कि यह किसी अमङ्गल घटना का पूर्ण लक्षण है । अतएव शङ्कित भाव से खिड़की के पास आकर आम्रकानन की ओर देखने लगी । आम्र-कानन में कुछ विशेष न दिखाई पड़ा । विमला घबड़ा कर अपने कक्ष से बाहर निकली, जिस ओर उस का कक्ष था उस के आगे आंगन था, और आंगन के पीछे फिर कक्षश्रेणी थी, उसी ओर छत पर जाने की सीढ़ी थी । विमला कक्ष से निकल कर सीढ़ियों से छत पर चढ़ी । इधर उधर देखने लगी; तथापि आम्रकानन के गंभीर छाया के कारण कुछ न देख सकी । विमला और भी दूनी घबड़ाहट के साथ छत के मुड़ेरे के पास गई, उस पर लटक कर दुर्ग की जड़ तक देखने लगी, तथापि कुछ न दिखाई पड़ा । श्यामोज्ज्वलशाखा और पत्र चन्द्रमा की स्निग्ध किरणों से प्लावित

हो रहे हैं, कभी २ मन्द पवन के झोंके से पिङ्गल वर्ण दिखाते, कानन के भीतर घोर अन्धकार छाया हुआ था, कहीं २ शाखा और पत्तों को विच्छेद कर चन्द्रालोक पड़ रहा है, दामोदर के स्थिर जल में नीलाम्बर, चन्द्रमा और तारा प्रतिबिम्बित हो रहे हैं; कुछ दूरी पर उसपार में गगनस्पर्शी अटारियां खड़ी हैं, कहीं २ उन के छतों पर प्रहरी की मूर्ति दिखाई देती है। इस के सिवाय और कुछ न देख सकी। विमला उदास हो लौटना ही चाहती थी, कि उसे जान पड़ा मानो किसी ने उस की पीठ पर उंगली छुलाई हो। विमला ने चमक कर पीछे फिर कर देखा कि एक शस्त्रधारी सैनिक अज्ञात पुरुष खड़ा है। विमला चित्र में लिखी पुतली की भांति हो गई।

शस्त्रधारी ने कहा—"चिल्लाना मत; सुन्दरी के मुख से चिल्लाना शोभा नहीं देता।"

जिस पुरुष ने अकस्मात् विमला को विह्वल कर दिया, उस का पहिरावा पठान जातीय सैनिकों की भांति था। कपड़ों की उत्तमता और बहुमूल्यता देखकर अनायास प्रतीति होती कि यह कोई उच्च पदाभिषिक्त है। अभी भी उस की अवस्था तीस से अधिक न हुई होगी। कांति अत्यन्त श्रीमान्, उसके प्रशस्त ललाट पर जो पगड़ी शोभायमान थी, उस पर एक बहुमूल्य हीरा शोभित था। यदि उस समय विमला का मन स्थिर होता और मिलान करके देखती तो जानती कि स्वयं जगत सिंह के साथ तुलना में यह व्यक्ति कुछ अधिक न्यून न होगा; जगतसिंह के सदृश दीर्घाकार या चौड़ी छाती तो नहीं है, किन्तु उन के समान वीरत्व

व्यंजक कांति, और उन से अधिक सुकुमार देह है। उस के बहु-मूल्य कटिबंध में मूंगा जड़ित म्यान में डोमास्क की बनी छुरी लटक रही है, हाथ में नंगी तरवार; और कोई शस्त्र पास न था।

सैनिक पुरुष ने कहा—"चिल्लाना मत, चिल्लाने से तुम विपद में पड़ोगी।"

प्रत्युत्पन्न बुद्धिशालिनी विमला क्षण भर तो विह्वला थी, सैनिक के फिर कहने पर उस का अभिप्राय समझ गई; विमला के पीछे छत का अंत है, और सामने शस्त्रधारी सैनिक; छत से विमला को नीचे फेकदेना कोई बड़ी बात नहीं है। यह समझ कर सुबुद्धि विमला ने कहा—"तुम कौन हो?"

सैनिक ने कहा-"हमारे परिचय से तुम्हें क्या लाभ होगा?"

विमला ने कहा-"तुम किस लिए इस दुर्ग में आए हो? जानते नहीं चोरों को फांसी होती है?"

सैनिक—सुन्दरि! हम चोर नहीं हैं।

विमला—तुम दुर्ग में कैसे आए?

सैनिक—तुम्हारी ही कृपा से। तुम ने जब जंगला खुला छोड़ दिया था तभी हम घुस आए थे, तुम्हारे पीछे पीछे इस छत पर चले आए।

विमला ने सिर पीटकर फिर पूछा-"तुम कौन हो?"

सैनिक ने कहा-"अब तुम्हें परिचय देने ही से हमारी क्या हानि होगी? हम पठान हैं।"

वि०—यह तो परिचय नहीं हुआ—यह जाना कि तुम जाति में पठान हो, पर तुम हो कौन ?

सै०—खुदा के फ़ज़ल से इस ग़रीब का इस्म उस्मान खां है ।

वि०—उसमान खां कौन है, हम नहीं पहचानतीं ।

सै०—उसमानखां कुतलू खां का सिपहसालार है ।

विमला का शरीर कांपने लगा । जी चाहता है किसी भांति भाग कर वीरेन्द्र सिंह को सम्वाद दें, परन्तु इस का कोई उपाय नहीं । सामने ही सेनापति रास्ता रोके खड़े हैं । कोई उपाय न देख कर, विमला ने सोचा कि अब जितनी देर इसे बातों में लगा रक्खें उतनी ही देर का अवकाश है । इस में दुर्ग का कोई पहरेदार भी संभव है कि इधर आ जाय । इस लिए फिर वार्तालाप आरम्भ किया ।

" आप इस दुर्ग में क्यों आए हैं ? "

उसमान खां ने उत्तर दिया -" हम लोगों ने वीरेन्द्र सिंह के पास निहायत आजिज़ी के साथ पत्र भेजा था, जवाब में उन्हों ने कहला भेजा, अगर तुम्हें ताक़त हो क़िले पर फ़ौजकशी करो ।"

विमला ने कहा-" समझा, दुर्गाधिपति ने आप लोगों के साथ मित्रता न रख कर मुग़ल का पक्ष लिया है, इसी से आप दुर्ग अधिकार करने आए हैं । पर आप तो अकेले दिखाई पड़ते हैं ?"

उस०—हां, इस वक्त हम अकेले ही हैं ।

विमला ने कहा- ' जान पड़ता है इसी डर से आप इन्हें नहीं आने देते ।"

भीरुतापवाद के भय से कदाचित् विरक्त हो कर पठान सेनापति उस का रास्ता छोड़ दें; इसी दुराशा से विमला ने यह कहा था।

उसमान खां ने मुस्किरा कर कहा—"नाज़नी! तुम्हारे पास तो सिर्फ़ तुम्हारी तीरे नज़र से डरना होता है; मगर मुझे वह भी खौफ़ नहीं है। तुम से एक भीख है।"

विमला कौतुक से उसमान खां के मुँह की ओर देखने लगी। उसमान खां ने कहा—"तुम्हारी ओढ़नी के आंचर में जो जंगला की कुञ्जी है उसे बख्श कर हमें इहसानमन्द करो। तुम्हारे बदन में हाथ लगा कर तुम्हारी बेइज़्जती करने में हमें लिहाज़ मालूम होता है।"

खिड़की की ताली सेनापति के अभीष्ट सिद्धि के लिए अत्यन्त ही प्रयोजनीय है यह समझने में विमला ऐसी चतुरा को विशेष देर न लगी। यह सब समझ कर विमला ने देखा कोई उपाय नहीं है। जो बल से ले सकता है उस के मांगने पर देना केवल व्यंग करना है। यों न दूंगी तो यह बलपूर्वक ले लेगा। दूसरा कोई होता तो चट ताली फेक देता, परन्तु चतुरा विमला ने कहा—"महाशय! यदि हम प्रसन्नता से ताली न दें तो आप क्या करैंगे?"

यह कहते कहते विमला ने ओढ़नी खोल कर हाथ में ले लिया। उसमान की आंख उसी ओढ़नी पर थी; उस ने उत्तर दिया—"खुशी से न दोगी तो तुम्हारे नाज़ुक बदन के छूने का लुत्फ़ हासिल करेंगे।"

"कीजिए" कह कर विमला ने ओढ़नी को आम्रकानन की ओर फेंका। उसमान की दृष्टि भी ओढ़नी पर थी। ज्यों ही विमला ने उसे फेंका उसमान ने त्यों ही हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ लिया।

उसमान खां ने ओढ़नी हस्तगत कर के विमला का हाथ अपने एक हाथ से वज्रमुष्टि से पकड़ लिया और दांत से ओढ़नी पकड़ कर दूसरे हाथ से ताली खोल कर अपने कमरबन्द में रख कर जो किया उस से विमला का मुंह सूख गया। उसमान ने विमला को सौ सलाम कर के हाथ जोड़ कर कहा–"मुआफ़ फ़र्माइएगा" यह कह कर उसी ओढ़नी से विमला का दोनों हाथ छत के मुनके से ख़ूब कस कर के बांध दिया। विमला ने कहा–"यह क्या?"

उसमान ने कहा–"मुहब्बत की फांस।"

वि०—इस दुष्कर्म का फल आप बहुत शीघ्र पावेंगे।

उसमान विमला को उसी अवस्था में छोड़ कर चल दिया। विमला चिल्लाने लगी, परन्तु कुछ फल न हुआ। किसी ने भी न सुना।

उसमान उसी मार्ग से उतर विमला के कक्ष के नीचे के कक्ष में गया; वहां विमला की भांति खिड़की की ताली घुमाकर जंगला को द्वार में घुसा दिया। मार्ग खुल जाने पर उसमान धीरे धीरे सीटी देने लगे। उसे सुनते ही पेड़ की आड़ से निकल कर एक योद्धा नंगे पांव खिड़की के पास आकर घर के भीतर घुस आया। उस के आने पर एक दूसरा और आया। योंही एक एक करके बहुत सी पठानसेना चुपचाप दुर्ग के भीतर आ गई। अन्त में जो मनुष्य खिड़की के पास आया था उसे सम्बोधन करके उसमान

ने कहा—" अब बस, तुम लोग बाहर ही ठहरो, हमारा बतलाया हुआ इशारा पाते ही तुम लोग बाहर से क़िले पर हमला करना, यह ख़बर तुम ताज खां को भी दे दो।" वह मनुष्य लौट गया। उसमान भीतर आई हुई सेना के साथ फिर धीरे धीरे छत पर आए। जिस छत पर विमला बंधी हुई थी, उस छत से होकर जाने के समय कहा—" यह औरत बड़ी ही आक़िल है; इस का एतबार हर्गिज़ न करना चाहिए। शेख़ रहीम! तुम इस के पास पहरेदारी करो। अगर भागने की, या किसी से गुफ़्तगू करने की कोशिश करै, या शोर करै, तो औरत के मारने का पसोपेश न करना।"

" जो हुक्म " कहकर रहीम वहां प्रहरी रहा।

पठान सेना छत छूही छत दुर्ग के सरी ओर चली गई।

ऊनविंश परिच्छेद।

प्रेमिक के साथ प्रेमिक।

विमला ने जब देखा कि चतुर उसमान अन्यत्र चले गए, तब भरोसा हुआ कि कौशल से मुक्त हो सकती हूं। झटपट उस का उपाय करने लगी।

थोड़ी देर प्रहरी के खड़े रहने पर विमला ने बातचीत आरम्भ किया। प्रहरी हो या यमदूत हो सुन्दरी स्त्री के साथ कौन इच्छा

करके बातचीत नहीं करता? विमला पहिले इधर उधर की बहुत सी सामान्य बात करने लगी। क्रमशः प्रहरी का नाम, धाम, गृहकर्म, सुख दुःख विषयक बहुत से परिचय पूछने लगी। प्रहरी अपने विषय में विमला की इतनी उत्कराठा देख बड़ा प्रसन्न हुआ।

विमला भी सुयोग पा कर क्रमशः अपने तरकस से तीव्र अस्त्र सब निकालने लगी। एक तो विमला का अमृतमय रसालाप, उस पर फिर साथही साथ बड़ी बड़ी आंखों का कटाक्षसंधान; प्रहरी एकबारगी पिघल गया। जब विमला ने भावभंगी देख कर समझा कि प्रहरी के अधःपात का समय आ गया, तब मृदु मृदु स्वर से कहा—"हम से क्यों डरते हो, शेखजी! तुम हमारे पास खिसककर बैठो न?"

प्रहरी कृतार्थ हो कर विमला के पास आ बैठा। थोड़ी देर तक ऊपरी बातों के होने पर विमला ने देखा कि दवा ने काम किया। प्रहरी जब से पास बैठा है बार बार उसी की ओर देख रहा है। बोली—"शेखजी, तुम्हें बड़ा पसीना हो रहा है, यदि हमारा बंधन खोल दो, तो हम थोड़ी देर हवा कर दें, फिर से बांध देना।"

शेख जी के सिर पर पसीने का नाम भी न था; परन्तु विमला भला बिना देखे क्यों कहती? और फिर इस हाथ की हवा किस के भाग्य में है? यह सोच प्रहरी ने तुरंत बन्धन खोल दिया।

विमला ने थोड़ी देर तक ओढ़नी से प्रहरी को हवा करने पर ओढ़नी को आनन्द पूर्वक शरीर पर ओढ़ लिया। फिर बांधने

का नाम भी प्रहरी के मुख से न निकल सका। इस का एक कारण भी था, जब ओढ़नी रस्सी के रूप से बदल कर विमला के शरीर पर शोभित हुई, तब उस का लावण्य और भी बढ़ गया। जिस लावण्य को दर्पण में देख कर विमला आप ही आप हंस उठी थी, उस लावण्य को देखकर प्रहरी मूक हो गया।

विमला ने कहा—" शेखजी! तुम्हारी स्त्री तुम्हें चाहती नहीं क्या?"

शेखजी ने कुछ विस्मित हो कर पूछा—' क्यों?"

विमला ने कहा—" चाहती होती तो इस वसंत ऋतु में (इस समय भयानक गर्मी पड़ रही थी, बरसात आरम्भ हुआ चाहती थी) तुम्हारे ऐसे स्वामी को किस प्राण से छोड़ कर रहती?"

शेखजी ने ठंढी श्वास ली।

विमला के तरकश से बराबर बाण निकलने लगे।

" शेखजी! कहने में लाज लगती है, पर जो तुम हमारे स्वामी होते तो हम तो कभी तुम्हें लड़ाई में आने न देती।"

प्रहरी ने फिर लंबी सांस छोड़ी। विमला कहने लगी—

" आहा! कहीं तुम हमारे स्वामी होते!"

यह कहकर विमला ने भी धीरे से एक ठंढी सांस ली, उस के साथ ही साथ अपना तीक्ष्ण, कुटिल कटाक्ष भी छोड़ा; प्रहरी का सिर घूम गया। वह क्रमशः खसकते खसकते विमला के और भी पास आ बैठा, विमला और भी सट गई।

विमला ने प्रहरी के हाथ में अपना कोमल हाथ दे दिया, प्रहरी हतबुद्धि हो गया।

विमला कहने लगी—"कहने में लाज लगती है, पर तुम लड़ाई जीतकर जाओगे तो हमें भी याद रक्खोगे?"

प्र०—तुम्हीं न याद रहोगी?

वि०—अपने मन की बात तुम से कहें?

प्र०—हां हां, ज़रूर कहो।

वि०—नहीं, न कहेंगी। तुम न जानें क्या कहो?

प्र०—नहीं नहीं, ज़रूर कहो—हमें अपना गुलाम समझो।

वि०—"हमारा बहुत ही जी चाहता है कि इस पापी स्वामी का मुंह काला कर के तुम्हारे साथ भाग चलें।" फिर वही कटाक्ष। प्रहरी मारे आह्लाद के नाच उठा; बोला—"चलोगी?" संसार में दिग्गज के ऐसे बहुतेरे पण्डित हैं।

विमला—जो लिवा चलोगे तो क्यों न चलूँगी?

प्र०—तुम्हें न लिवा चलेंगे! तुम्हारे तो गुलाम हो कर रहेंगे।

"तुम्हारे इस प्रेम का पुरस्कार हम क्या दें? अच्छा लेव यह लेव" यह कह कर विमला ने अपने गले की सोने की माला प्रहरी को पहिरा दिया। प्रहरी मानो सशरीर स्वर्ग में पहुँच गया। विमला कहने लगी—"हमारे शास्त्र में लिखा है कि एक की माला दूसरे के गले में पहिरा देने ही से ब्याह हो जाता है।"

मारे आनन्द के प्रहरी के दांत खिल गये, बोला—"तब तो हमारे साथ तुम्हारी शादी होगई।"

212

"और नहीं तो क्या?" विमला थोड़ी देर तक चिन्ता में मग्न रही। प्रहरी ने कहा—"क्या सोच रही हो?"

वि॰—जान पड़ता है हमारे भाग में सुख बदा नहीं है। तुम लोग आज दुर्ग न जय कर सकोगे।

प्रहरी ने दर्प के साथ कहा—"इस में अब कोई शक नहीं है; अब फ़तह हुई।"

विमला ने कहा—"उंहूं! एक बड़ी गुप्त बात है।"

प्रहरी ने कहा—"क्या?"

वि॰—तुम से वह बात कह दें, कदाचित् तुम किसी तरह दुर्ग जय करा सको।

प्रहरी मुंह बाकर सुनने लगा, विमला कहने में संकोच करने लगी। प्रहरी ने घबड़ा कर कहा—"क्या मामला है?"

विमला ने कहा—"तुम लोग जानते नहीं, इसी दुर्ग के पास ही जगत सिंह दस हज़ार सेना लेकर बैठे हैं। तुम लोग आज गुप्त भाव से आओगे यह जान कर वह पहिले ही से आ कर बैठे हैं, इस समय कुछ न करेंगे, जब तुम लोग दुर्ग जय कर के निश्चिन्त होगे उसी समय आ घेरेंगे।"

प्रहरी ने थोड़ी देर तक चुप रहके पीछे कहा—"इस के क्या मानी?"

वि॰—यह बात दुर्ग के सब लोग जानते हैं। हम ने भी सुना था। प्रहरी आह्लाद में फूल कर बोला—"जान! आज तुम हमें बड़ा आदमी बना दोगी। अभी हम जाकर सिपहसालार से

कह आते हैं; ऐसी ज़रूरी ख़बर देने से ख़िल्लत मिलैगी। तुम यहीं ठहरो, हम अभी आते हैं।"

प्रहरी के मन में विमला की ओर से तिलमात्र भी सन्देह न रहा।

विमला ने कहा—"आओगे ज़रूर न?"

प्र०—आवैंगे क्या—अभी आए—

वि०—हमें भूल न जाना?

प्र०—नहीं—नहीं।

वि०—देखो तुम्हें हमारा शपथ है।

"कुछ हर्ज नहीं" कहकर प्रहरी एकदम दौड़ा गया।

ज्योंहीं प्रहरी अदृश्य हुआ त्योंहीं विमला उठकर भागी। उसमान की बात सच हुई कि—"विमला के कटाक्ष ही से डर है।"

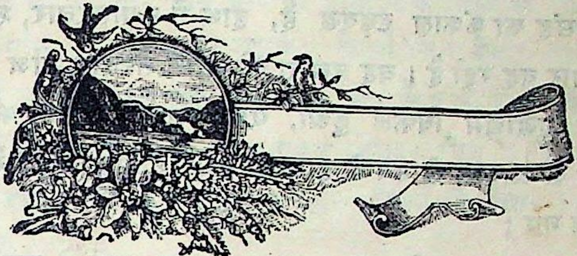

विंश परिच्छेद ।

प्रकोष्ठ ही प्रकोष्ठ ।

बंधन से छूटते ही विमला का पहिला काम वीरेन्द्र सिंह को संवाद देना था। ऊर्ध्वश्वास से वीरेन्द्रसिंह के शयनकक्ष की ओर दौड़ी।

आधोदूर न जाते जाते ही "अल्लाह—अल्लाह" करके पठान सेना की चिक्कारध्वनि उस के कान में गूंज उठी।

"यह क्या पठान सेना की जयध्वनि है?" कहकर विमला व्याकुल हो गई। क्रमशः अत्यंत कोलाहल सुनाई पड़ने लगा, विमला ने समझा कि दुर्गवाली लोग भी जाग गए।

घबड़ाई हुई वीरेन्द्रसिंह के शयनकक्ष की ओर जाकर देखा, कि कक्ष के भीतर ही अत्यन्त कोलाहल मचा है। पठान सेना ने

द्वार तोड़कर कक्ष में प्रवेश किया है। विमला ने झांककर देखा कि वीरेन्द्रसिंह का कंकाल दृढ़बद्ध है, हाथ में नंगीतरवार, शरीर से रुधिरधार बह रही है। वह उन्मत्त की भांति तरवार भांज रहे हैं। उन का युद्धोद्यम विफल हुआ, एक बलवान् पठान की बड़ी तरवार के आघात से उन के हाथ की तरवार गिर गई; वीरेन्द्रसिंह बंदी हो गए।

विमला यह सब देख सुन हताश होकर वहां से चली, अभी भी तिलोत्तमा के बचाने का समय है। विमला उसी ओर दौड़ी। रास्ते में देखा—तिलोत्तमा के कक्ष तक पहुंचना दुःसाध्य है, चारों ओर पठान सेना फैलगई है। पठानों के दुर्ग जय होने में कुछ भी संदेह नहीं है।

विमला ने देखा—तिलोत्तमा के घर की ओर जाने से पठानों के हाथों में पड़ना होगा, वहां से फिरी, कातर होकर सोचने लगी, इस विपत्तिकाल में जगतसिंह और तिलोत्तमा को कैसे समाचार दें। विमला एक कक्ष में खड़ी चिन्ता कर रही है; इतने में देखा कि उस के पासवाले घर को लूट कर कई एक सैनिक लोग उसी घर को लूटने के लिए आ रहे हैं। विमला अत्यन्त शङ्कित हो घबड़ा कर, कक्ष में एक सन्दूक के पीछे छिप गई; सैनिक लोग आकर उस घर के सब पदार्थों को लूटने लगे। विमला ने देखा कि अब निस्तार नहीं है, लुटेरे जब इस सन्दूक को लूटने आवेंगे, मुझे अवश्य पकड़ेंगे। विमला साहस करके थोड़ी देर तक अपेक्षा करती रही, और सन्दूक की ओर से देखने लगी कि पठान लोग क्या कर रहे हैं। विमला का साहस अतुलनीय था; विपत्ति-

काल में साहस और भी बढ़ा। जब देखा कि सैनिक लोग अपने २ लूटपाट में लगे हैं, तब धीरे से सन्दूक़ के पीछे से निकल कर हलके पांव धीरे २ बाहर भागी। किसी ने न देखा, सब के सब लूट में व्यस्त थे। विमला ज्योंहीं कक्ष से आगे बढ़ी कि पीछे से एक सैनिक ने उस का हाथ पकड़ लिया। विमला ने उलट कर देखा रहीम शेख़ है। वह बोल उठा—"क्यों री शैतान! अब कहां भागैगी?"

रहीम के हाथ फिर आ जाने से, विमला का मुंह सूख गया, परन्तु वह क्षणकाल मात्र; तेजस्विनी बुद्धि के प्रभाव से तुरन्त हर्षोत्फुल्ल हो गई। विमला मन में कहने लगी—"इसी द्वारा कार्य सिद्ध होगा।" उस के उत्तर में बोली—"चुप, चुप, बाहर आओ।"

यह कह कर विमला रहीम शेख़ का हाथ पकड़ कर बाहर खींच लाई। विमला ने उसे अकेले में पाकर कहा—"छि! छि! छि! तुम्हारे ऐसे कर्म हैं? हमें छोड़ कर तुम कहां चल दिए थे? ऐसा कोई स्थान नहीं जहां हम ने तुम्हें न ढूंढ़ा हो।" विमला ने फिर वही कटाक्ष शेख़ जी की ओर किया।

शेख़ जी का क्रोध शान्त हो गया। कहा—"हम सिपहसालार को जगतसिंह की खबर देने के लिए खोजते फिरते थे, उन का पता न मिलने पर तुम्हें ढूंढ़ने लगे, तुम्हें छत पर न पाकर खोजते फिरते हैं।"

विमला ने कहा—"हम ने तुम्हारे आने में देर देख कर समझा कि तुम हमें भूल गए, इस से तुम्हें खोजने को वहां से चली आई।

अब देर करने से क्या काम ? तुम लोगों का दुर्ग में दखल हो गया, इस समय भागने का उद्योग करना चाहिए ।"

रहीम ने कहा—"आज नहीं कल्ह चलना । बिना कहे कैसे चलें ? कल्ह सबेरे सिपहसालार से रुख़सत होलेंगे ।"

विमला ने कहा—"अच्छा तो चलो, हमारा गहना आदि जो कुछ है इसी समय ले लें; ऐसा न हो कोई दूसरा सिपाही लूट ले ।"

सैनिक ने कहा—"चलो ।" सैनिक को साथ लेने से उस का यही अभिप्राय था कि वह दूसरे सैनिकों से विमला की रक्षा करैगा। उस की सतर्कता का तुरन्त ही उदाहरण मिल गया। वे लोग थोड़ी ही दूर आगे बढ़े थे कि एक दल लुटेरे सैनिक सामने हो आ पड़े। विमला को देखते ही वे सब चिल्ला उठे—"अरे तुम्हें तो बड़ा शिकार हाथ आया !"

रहीम ने कहा—"भाई ! तुम सब अपने २ काम करो; इधर नज़र न उठाना ।"

सैनिक लोग भाव समझ कर चुप हो गए। एक ने कहा—"रहीम ! तुम्हारी क़िस्मत ज़बर्दस्त है। तुम ने नव्वाब के मुंह का लुकमा निकाल लिया ।"

विमला और रहीम चल दिए। विमला ने रहीम को अपने शयनागार के नीचे की कोठरी में लिवा जाकर कहा—"यह हमारा नीचे का घर है, यहां जो जो पदार्थ लेने की तुम्हारी इच्छा हो इकट्ठा कर लो; इस के ऊपर हमारा सोने का घर है; वहां से हम

गहने लेकर अभी आती हैं।" यह कह कर उस ने एक गुच्छा कुंजी का फेंक दिया।

रहीम अपनी कोठरी में बहुत से पदार्थ देख कर हृष्टचित्त हो संदूक, पेटारे खोलने लगा। विमला पर तिलार्द्ध मात्र भी अविश्वास न रहा; विमला ने घर से बाहर निकलते ही किवाड़ खींचकर बाहर से सिकरी चढ़ा कर ताला बंद कर दिया। रहीम कोठरी में बन्दी हो गया।

विमला चटपट ऊर्ध्वश्वास दौड़कर ऊपर के घरमें गई। विमला और तिलोत्तमा का प्रकोष्ठ दुर्ग के प्रांतभाग में था। उधर अब तक अत्याचारी सेना नहीं पहुंची थी। तिलोत्तमा और जगतसिंह ने कोलाहल सुना है कि नहीं इस में भी संदेह है। विमला एकाएकी तिलोत्तमा के घर में प्रवेश न करके कौतूहल प्रयुक्त द्वार के छिद्र से चुपचाप तिलोत्तमा और जगतसिंह का भाव देखने लगी। जिस का जो स्वभाव होता है कभी नहीं छूटता! विमला को इस समय भी कौतूहल था। जो देखा उस से कुछ विस्मित हुई।

तिलोत्तमा पलंग पर बैठी है, जगतसिंह पास खड़े चुपचाप उस के मुखमंडल की ओर देख रहे हैं। तिलोत्तमा रो रही है; जगतसिंह भी आंख पोंछ रहे हैं।

विमला ने सोचा—"यह जान पड़ता है बिदाई का रोदन है।"

एकविंशपरिच्छेद ।

खड्ग से खड्ग ।

विमला को देखकर जगतसिंह ने पूछा—"कोलाहल किस बात का है ?"

विमला ने कहा—"पठानों की जयध्वनि है; शीघ्र उपाय कीजिए; दमभर में शत्रु इस घर में भी पहुंचते ही हैं ।"

जगतसिंह ने क्षणभर चिन्ता करके कहा—"वीरेन्द्रसिंह क्या करते हैं ?"

विमला ने कहा—"वह तो शत्रु के हाथ में बंदी हो गए ।"

तिलोत्तमा अस्फुट स्वर से चीत्कार कर उठी, और पलंग पर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ी ।

जगतसिंह ने घबड़ा कर कहा—"देखो देखो, तिलोत्तमा को देखो ।"

विमला ने तुरंत गुलाबपाश से गुलाब जल तिलोत्तमा के मुख, कंठ और कपोल पर छिड़का, और कातर हो कर पंखा करने लगी।

शत्रुओं का कोलाहल और भी समीप पहुंचा। विमला ने रोती सी हो कर कहा—"यह देखो आता है, राजपुत्र! अब क्या होगा?"

जगतसिंह की आंख से चिनगारियां निकलने लगीं। बोले—"अकेले क्या कर सकते हैं? हां, तुम्हारी सखी की रक्षा के लिए प्राण विसर्जन करेंगे।"

शत्रु का भीमनाद और भी निकट होने लगा। अस्त्रों की झन-झनाहट भी सुनाई पड़ने लगी। विमला चिल्ला उठी—"तिलोत्तमा! तिलोत्तमा! इस समय तुम अचेतन क्या हो गईं? हाय! तुम्हें कैसे बचावें?"

तिलोत्तमा ने आंख खोली। विमला ने कहा—"तिलोत्तमा सचेत होती है। राजकुमार! राजकुमार! अब भी तिलोत्तमा को बचाओ।"

राजकुमार ने कहा—"इस घर में रह कर किस की सामर्थ्य है जो रक्षा करै। अभी भी यदि घर से बाहर निकल सको तो हम कदाचित् तुम लोगों को दुर्ग के बाहर ले जा सकेंगे। पर तिलोत्तमा में तो चलने की शक्ति ही नहीं है! विमले! यह देखो, पठान लोग सीढ़ी पर चढ़ रहे हैं। पहिले हम प्राण देंगे, परन्तु हाय! परिताप यह है कि प्राण देकर भी तुम लोगों को न बचा सके।"

विमला चट तिलोत्तमा को गोद ले कर बोली—"तो चलिए, मैं तिलोत्तमा को ले चलती हूं ।"

विमला और जगत सिंह तीन झपट्टे में कक्षद्वार पर पहुंचे। इधर चार पठान सैनिक भी इसी समय वेग से दौड़ कर कक्षद्वार पर आ पहुंचे । जगत सिंह ने कहा—"विमले, अब कुछ नहीं हो सकता, अच्छा हमारे पीछे पीछे चली आओ ।"

पठान लोग सामने शिकार पाकर "अल्लाह अल्लाह" करके पिशाच की भांति उछलने लगे। कमर के अस्त्र झनझना उठे। यह चीत्कार शेष न हुआ था कि जगतसिंह की तलवार जड़ तक एक पठान के हृदय में पहुंच गई। घोर चिग्घार करके पठान ने प्राण त्याग किया। पठान की छाती से तलवार निकालने के पहिले ही एक दूसरे पठान के बर्छी का फल जगतसिंह के ग्रीवा के पास आ पहुंचा, भाला न गिरते गिरते ही कुमार ने बिजली की भांति झपट कर बाएं हाथ से भाला पकड़ लिया; और उसी भाले के प्रतिघात से तत्क्षण पठान को भूमिशायी करा दिया। दो पठानों ने पलक मात्र में एक साथ जगतसिंह के मस्तक को लक्ष करके तलवार चलाई। जगतसिंह ने पलक मोड़ने का भी अवकाश न पाकर दाहिने हाथ की तलवार के आघात से एक की तलवार सहित प्रकोष्ठ को छेदते हुए भूमि पर गिरा दिया; दूसरे का प्रहार निवारण न कर सके, तलवार सिर पर तो नहीं लगी, परंतु स्कंध के निकट दारुण आघात लगा। कुमार आघात लगने की यंत्रणा से व्याधा के शरविद्ध व्याघ्र की भांति द्विगुण प्रचंड हो उठे। पठान तलवार उठाकर फिर आघात करने के लिए उद्यम

भी न कर सका था कि कुमार ने दोनों हाथ की मुष्टि दृढ़ बांधकर भीषण असिधारण पूर्वक आघातकारी पठान के सिर पर लपक कर मारा, उसका सिर पगड़ी सहित दो खंड होकर जा पड़ा किन्तु इसी समय जिस सैनिक का हाथ कटा था, उसने बाएं हाथ से कमर से छुरी निकाल कर राजपुत्र पर लक्ष किया। जिस समय राजपुत्र का शरीर मारने के पीछे पृथ्वी की ओर झुक रहा था, उसी समय वह छुरी राजपुत्र के विशाल बाहु के बीच में गहिरी विंध गई। राजपुत्र ने उसे सूई गड़ने के समान मानकर पठान के कमर पर पर्वत गिरने के समान पदाघात किया, यवन दूर जाकर गिरा। राजपुत्र वेग से दौड़कर उसका सिर काटने को उद्यत हुए ही थे कि "अल्लाह—अल्लाह" करते अगणित पठान सेनास्रोत ने कक्ष में प्रवेश किया। राजपुत्र ने देखा—अब युद्ध करना केवल मरने के लिए है।

राजपुत्र का शरीर रुधिर से प्लावित हो रहा है, रुधिर गिरने से क्रमशः शरीर क्षीण हो रहा है।

तिलोत्तमा अब तक अचेतनावस्था में विमला की गोद में है।

विमला तिलोत्तमा को गोद में लिए रो रही है, उसका वस्त्र भी राजपुत्र के रुधिर से तर हो रहा है।

कक्ष पठानसेना से परिपूर्ण हो गया।

राजपुत्र ने एक बेर तलवार पर भार देकर दम लिया। एक पठान ने कहा—"ओ बुज़दिल! हथियार रख दे, तुझे जान से न मारेंगे।" बुझती हुई आग में मानो किसी ने घी की आहुति

दी, अग्निशिखा के समान झपट कर राजकुमार ने उस दाम्भिक पठान का सिर काट कर अपने पैरों के नीचे दल कर तलवार भांजते भांजते ललकार कर कहा—' यवन! देखो, राजपूत लोग किस प्रकार से प्राण देते हैं!"

फिर तो बिजली की भांति कुमार की तलवार चमकने लगी। राजपुत्र ने देखा कि अकेले तो युद्ध हो सकता नहीं, परन्तु जहां तक हो सके शत्रुनिपात करके प्राण देना ही उचित है। इस अभिप्राय से शत्रुदल के बीच में घुस कर दोनों हाथ में वज्रमुष्टि द्वारा तलवार ले कर चलाने लगे, आत्मरक्षा की ओर तनिक भी मनोयोग न रहा, केवल आघात पर आघात करने लगे। एक—दो—तीन—प्रति आघात में या तो किसी पठान का प्राणही जाता या अंगभंग ही होता। राजपुत्र के शरीर पर, चारों ओर से वर्षाधार की भांति अस्त्राघात होने लगा। अब हाथ नहीं चलता, क्रमशः बारम्बार आघात लग कर शरीर से रक्तप्रवाह निर्गत होने से बाहु क्षीण हो चली, सिर घूमने लगा, आंखों के आगे अंधेरा छा गया; कान में अस्पष्ट कोलाहल मात्र सुनाई देने लगा।

" राजपुत्र को कोई जान से न मारै, शेर को जीते ही गिरफ्तार कर के पिंजड़े में बंद करना होगा।"

इस बात के पीछे राजकुमार और कोई बात न सुन सके, उसमानखां ने यह कहा था।

राजपुत्र को दोनों बाहु शिथिल हो कर फैल गई; बलहीन मुष्टि से झनझना कर तलवार भूतल पर गिर गई। राजपुत्र अचेत

होकर अपने ही मारे हुए एक पठान के मृत शरीर पर मूर्च्छित हो गिर पड़े।

बीसों पठान राजपुत्र की पगड़ी के रत्न लेने के अभिप्राय से दौड़े। उसमानखां ने वज्र गम्भीर स्वर से कहा—"ख़बर्दार! कोई राजपुत्र के बदन में हाथ न लगावै।"

सब हट गए। उसमानखां और एक और सैनिक ने पकड़ कर राजकुमार को पलंग पर सोला दिया। जगतसिंह के जी में अभी चार ही घड़ी पहिले यह आशा उदय हुई थी कि, तिलोत्तमा से विवाह करके एक दिन इसी पलङ्ग पर तिलोत्तमा के साथ बैठेंगे—वही पलङ्ग उनकी मृत्युशय्या हो गई।

जगतसिंह को सुलाकर उसमानख़ां ने सैनिकों से पूछा—"औरतें कहां हैं?"

उसमानख़ां ने विमला और तिलोत्तमा को न देखा। जिस समय दूसरी बेर सेनाप्रवाह कक्ष में प्रधावित हुआ उसी समय विमला भविष्यत्ज्ञान गई थी, उपायान्तर न देख कर तिलोत्तमा को लेकर पलंग के नीचे छिप गई, किसी ने देखा नहीं। उसमान ने उन लोगों को न देख कर कहा—"औरतें कहां गईं? तुम लोग किले में सब जगह तलाश करो। बांदी बड़ी होशियार है; अगर वह भागी होगी तो हमें बड़ा तरद्दुद उठाना पड़ेगा। मगर ख़बर्दार! वीरेन्द्र-सिंह की दुख़्तर पर कोई ज़ुल्म न होने पावै।"

सैनिक लोगों में से कई एक दुर्ग के और भागों में खोजने के लिए निकले, दो एक व्यक्ति कक्ष (कोठरी) के भीतर ही खोजने

लगे। एक सैनिक इधर उधर देख कर दीपक ले पलङ्ग के नोचे देखने लगा। खोई हुई वस्तु पाकर बोला—" यहीं तो हैं।"

उसमान ने खुशी से कहा—" तुम लोग बाहर निकल आओ, किसी तरह का खौफ न खाओ।"

पहिले विमला निकल आई फिर तिलोत्तमा को निकाल कर बिठाया। उस समय तिलोत्तमा चैतन्य होती जाती थी, इस से बैठ सकी। धीरे धीरे विमला से पूछा—" हम लोग कहां आ गईं?"

विमला ने झुक कर कान में कहा—" कोई चिन्ता की बात नहीं है, घूंघट काढ़ के बैठो।"

जिस ने इन लोगों को ढूंढ़ निकाला था, उस ने उसमान से कहा—" हुजूर! गुलाम ने तलाश कर के निकाला है।"

उसमान ने कहा—" तुम इनआम के खास्तगार हो? तुम्हारा नाम क्या है?"

उस ने कहा—"गुलाम का नाम करीमबख़्श है, मगर करीमबख़्श नाम कहने से कोई न पहिचानेगा। फिदवी पहिले मुगल फौज में था, इसलिए लोग दिल्लगी की राह से ताबेदार को मुगल सिपह-सालार कहते हैं।"

विमला सुनते ही कांप उठी; उसे अभिराम स्वामी की ज्योतिर्गणना स्मरण आ गई।

उसमान ने कहा—

" अच्छा हम खियाल रखेंगे।"

॥ इति प्रथम खण्ड ॥

द्वितीय खण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

आयषा ।

जगत सिंह ने जब आंखें खोलीं, तब देखा कि सुरम्य हर्म्य के भीतर पलंग पर सोए हैं। जिस घर में सोए थे, उस में पहिले कभी आए थे, यह न स्मरण हुआ। कक्ष अत्यन्त प्रशस्त, अत्यन्त सुशोभित, प्रस्तर निर्मित भूमि, पैर के सुखद गलीचा से आवृत, उस के ऊपर गुलाबपाश आदि सोना, चांदी, हाथीदांत के बहुमूल्य पदार्थ रक्खे हैं। कक्षद्वार और गवाक्षों में नीले रङ्ग के पर्दे पड़े हैं, इस से दिन में भी आलोक अत्यन्त स्निग्ध हो कर कक्ष में आता है। कक्ष नाना विधि स्निग्ध सुगन्ध से आमोदित हो रहा है।

कक्ष ऐसा निःशब्द है, मानो कोई भी नहीं है। एक किङ्करी सुवासित वारिसिक्त पङ्खा हाथ में लिए चुपचाप खड़ी राजपुत्र

को हवा कर रही है, एक दूसरी किङ्करी कुछ दूर पर वाक्शक्ति-हीना चित्र की पुतली की नाईं खड़ी है। जिस हाथीदांत के पलंग के ऊपर राजपुत्र सोए हैं, उस के ऊपर राजपुत्र के पार्श्व में एक स्त्री बैठी है। अत्यन्त सावधानी से उन के कटे घावों के ऊपर किसी औषधि का लेप कर रही है। कक्ष में गलीचा के ऊपर उत्तम परिच्छद धारण किए एक पठान बैठा पान खा रहा है; और फ़ारसी पुस्तक पढ़ रहा है। कोई न बोलता है और न कुछ शब्द करता है।

राजपुत्र ने आंख खोल कर कक्ष में चारों ओर देखा, करवट फेरना चाहा, परन्तु तिल भर भी न हिल सके; सारे शरीर में दारुण वेदना होने लगी।

पलङ्ग पर जो स्त्री बैठी थी, उस ने राजपुत्र का उद्यम देखकर अत्यंत मृदु, वीणासदृश मधुर स्वर से कहा—"ज्यों के त्यों सोए रहिये, हिलिए मत।"

राजपुत्र ने क्षीण स्वर से पूछा—"हम कहां हैं?"

उसी मधुर स्वर से उत्तर मिला—"ख़ामोश रहिए, आप बहुत अच्छी जगह में हैं। किसी तरह का तरद्दुद न फ़र्माइए और न बातें कीजिए।"

राजपुत्र ने फिर अत्यन्त क्षीण स्वर से पूछा—

"क्या समय होगा?"

मधुरभाषिणी ने फिर अस्फुट स्वर से कहा—

"सेहपहर का वक़्त होगा। आप ज़रा स्थिर रहिए, बोलने से

आराम न हो सकिएगा । अगर आप ख़ामोश न रहेंगे तो हम लोग हट जायंगी ।"

राजपुत्र ने कष्ट के साथ पूछा—"एक बात और बता दीजिए, आप कौन हैं ?"

रमणी ने कहा—"आयषा ।"

राजपुत्र निस्तब्ध हो कर आयषा का मुख देखने लगे । क्या इसे और भी कहीं देखा है ? नहीं; और कभी नहीं देखा है यह निश्चय प्रतीति होने लगी ।

आयषा की अवस्था प्रायः बाईस वर्ष की होगी । आयषा देखने में परमसुन्दरी थी, परन्तु ऐसे सौन्दर्य का पूरा प्रकाश करना दो चार शब्दों में दुःसाध्य है । तिलोत्तमा भी परम रूपवती है, परन्तु आयषा का सौन्दर्य उस प्रकार का नहीं है; स्थिरयौवना विमला की रूपछटा भी इस समय तक मनोमोहिनी है, परन्तु आयषा की रूपराशि उसके सदृश भी नहीं है । किसी २ तरुणी का सौन्दर्य वासन्ती मल्लिका के समान, नवस्फुट, सलज्ज संकुचित, कोमल, निर्मल और सुगन्धमय होता है । तिलोत्तमा का सौन्दर्य वैसा ही था । किसी रमणी का रूप अपराह्न के गुलाब के सदृश, निर्वास, मुदितोन्मुख, शुष्क, पल्लव, अथच सुशोभित, अधिक विकसित, अधिक प्रभाविशिष्ट, मधुपरिपूर्ण होता है । विमला वैसी ही सुन्दरी थी । आयषा का सौन्दर्य नवरविकर फुल्ल जलनलिनी के सदृश, सुविकाशित, सुवासित, रसपरिपूर्ण, रौद्र-प्रदीप्त; न संकुचित और न विशुष्क; कोमल अथच प्रोज्ज्वल; पूर्ण दलों की श्रेणी से किरणें प्रफुल्लित हो रही हैं, अथच मुख पर

हंसी खिली पड़ती है। पाठक महाशय, रूप का उंजियाला कभी देखा है? न देखा होगा तो सुना हो होगा। बहुत सी सुन्दरी अपने रूप से दशो दिशा उंजियाली करती हैं। सुनने में आता है कि किसी किसी की पुत्रवधू घर को उंजियाला कर देती है। ब्रजधाम और निशुम्भ के युद्धकाल में रूप से प्रकाश हुआ था। वस्तुतः "रूप का प्रकाश" किसे कहते हैं पाठक महाशयों ने समझा? विमला रूप से प्रकाश करती किंतु वह दीपक के प्रकाश के समान, टिमटिम कर के, तेल चाहिए, बिना उस के जल नहीं सकता; घर के काम देता है; उसे लेकर सब काम करो, अन्न सिझाओ, बिछावन बिछाओ, सब होगा, परन्तु शरीर में ठेस न लगे, नहीं तो धब्बा पड़ जायगा। तिलोत्तमा भी रूप से प्रकाश करती—वह बालेन्दु की ज्योति के समान, सुविमल, सुमधुर, सुशीतल; पर उस से गृहकार्य नहीं हो सकते, उतना प्रखर नहीं है और बहुत दूर से निकलता है। आयषा भी रूप से प्रकाश करती, परन्तु वह पूर्वान्ह की सूर्यरश्मि के समान, प्रदीप्त, प्रभामय, अथच जिस पर जा पड़ती वही खिल उठता।

जैसे उद्यान में पद्मपुष्प रहता है वैसे ही इस आख्यायिका में आयषा है; इस लिए उस का रूप पाठक महाशयों के ध्यान में प्राप्त कराना चाहते हैं। यदि हम चित्रकार होते, यदि हाथ में कलम उठा सकते, यदि ऐसा वर्ण बना सकते; न चम्पक, न रक्त, न श्वेत पद्म दल, अथच तीनों ही मिला हुआ; ऐसा वर्ण उत्पन्न करा सकते, यदि वह कपाल वैसा ठीक आंक सकते, सुन्दर अथच विस्तीर्ण, मन्मथ के रंगभूमि जैसा लिख सकते; उस के ऊपर

वैसी ही सुबंकिम केश की सीमा रेखा खींच सकते; वह रेखा वैसी ही परिष्कार, वैसी ही कपाल की गोलाकृति की अनुगामिनी कर के कान तक खींच सकते, कान के ऊपर वह रेखा उसी रीति से घुमा सकते, यदि वैसे ही काले रेशम की भांति बालों को लिख सकते, बाल में कपाल के बीच से वैसी ही सीधी मांग काढ़ सकते, वैसी ही परिष्कार, वैसी ही सूक्ष्म, यदि वैसे ही केश रंजित कर सकते; यदि वैसी ही चंचल चोटी गूंथ सकते; यदि वैसे ही घने भ्रू युगल आंक कर दिखा सकते; पहिले जहां से दोनों भौंह संयोगाशयी होने पर भी मिलित न हो कर वहां से यथोचित चढ़ाव होते होते बीच में न पहुंचते पहुंचते ही जैसी स्थूल रेखा हो गई है, और फिर जैसे क्रमशः सूक्ष्माकार हो केशविन्यास रेखा के निकट जा कर सूई की नोक के समान समाप्त हो गई है, यदि उस को दिखा सकते; यदि वैसा ही विद्युदग्नि पूर्ण मेघवत्, चंचल, कोमल, चक्षुपल्लव लिख सकते, यदि उस विस्तृत नयन युगल का आकार लिख सकते, उस के ऊपर और नीचे के पल्लव की सुन्दर वंकभंगी, उन आंखों की नीलालक्त प्रभा, उस के भ्रमर कृष्ण स्थूल तारा लिख सकते; यदि वह गर्व विस्फारित रंध्रसमेत सुनासा, वह रसमय ओष्ठाधर, वह कवरी स्पृष्ट प्रस्तरश्वेत ग्रीवा, वह कर्णाभरण स्पर्शप्रार्थी पुष्ट कंधे, वह स्थूल कोमल रत्नालंकार खचितबाहु, जिस पर अंगुली में रत्नांगुरीय हीनभास होती हैं, वह अंगुली, वह पद्मारक्त कोमल करपल्लव; वह मुक्ताहार प्रभानिन्दी पीवरोन्नत वक्ष, कुछ लम्बे शरीर की मनोमोहिनी भङ्गी; यदि यह सब लिख सकते, तौ भी क़लम हाथ से न छूते । आयषा

का सौन्दर्यसार उस समुद्र की कौस्तुभ मणि है। उस के कटाक्ष धीर हैं! संध्या समीरण कंपित नीलोत्पल तुल्य धीर चञ्चल कटाक्ष हैं, किस प्रकार से लिखे जा सकते हैं?

राजपुत्र आयषा की ओर बड़ी देर तक देखते रहे। उन के मन में तिलोत्तमा का ध्यान आया। स्मरण होते ही हृदय मानो विदीर्ण हो गया, शिरासमूह में रक्तस्रोत प्रबल वेग से प्रधावित होने लगा, गहिरे घावों में से फिर रक्त प्रवाह चला; राजपुत्र ने फिर अचेत हो कर आंख बन्द कर लिया।

पलङ्ग पर बैठी हुई सुन्दरी तुरन्त उठ खड़ी हुई। जो व्यक्ति गलीचा पर बैठा पुस्तक पढ़ रहा था, वह बीच बीच में पुस्तक से आंख उठा कर प्रेम पूर्वक आयषा की ओर दृष्टिपात करता था, युवती के पलङ्ग से उठने पर जो कर्णाभरण हिलने लगे, पठान बड़ी देर तक उसी को अपरितृप्त लोचन से देखता रहा। आयषा ने पलङ्ग से उठ कर धीरे धीरे पठान के पास आकर उसके कान में कहा—"उसमान! हकीम साहब के यहां फौरन आदमी भेजो।"

दुर्गजेता उसमान खां ही गलीचा पर बैठे थे। आयषा की बात सुन कर वह उठे।

आयषा, एक चांदी की तिपाई पर जो पात्र रक्खा था, उसमें से कोई जल के ऐसी वस्तु लेकर पुनर्मूर्च्छागत राजपुत्र के कपाल और मुख पर छिड़कने लगी।

उसमान खां तुरन्त हकीम को साथलिए आ पहुंचे। हकीम ने अनेक यत्नों से रक्तस्राव बन्द किया, और नाना विधि की औषधि आयषा के पास रख कर धीरे धीरे उसकी व्यवस्था समझा दी।

आयषा ने कान में पूछा—"हालत क्या देखते हैं ?"

हकीम ने कहा—"ख़ौफ़नाक बुख़ार है।"

हकीम के विदा होकर लौटने के समय, उसमान ने उनके पीछे २ द्वार पर आकर धीरे से पूछा—"बच तो जायँगे ?"

हकीम ने कहा—"बचने का रङ्ग तो नहीं है; अगर फिर कोई तकलीफ़ हो तो हमें फौरन तलब फर्माइएगा।"

द्वितीय परिच्छेद ।

फूल के भीतर पाषाण ।

उस दिन, रात के समय बड़ी देर तक आयषा और उसमान जगतसिंह के पास बैठे रहे । जगतसिंह को कभी चेत होता है, कभी मूर्च्छा होती है, हकीम कई बेर आकर देख गए । आयषा अविश्रांत होकर कुमार की शुश्रूषा करने लगी । दो पहर रात गए, एक परिचारिका ने आकर कहा कि, बेगम साहिब ने उन्हें स्मरण किया है ।

"आती हूं" कह कर आयषा उठी । उसमान भी उठे । आयषा ने पूछा—"तुम भी चले ?"

उसमान ने कहा-"शब ज्यादः गई, चलो तुम्हें पहुंचा दें ।"

आयषा दास दासी गणों को सतर्क रहने का आदेश कर मातृगृहाभिमुख चली । रास्ते में उसमान ने पूछा—"क्या तुम आज बेगम साहिबा के पास रहोगी ?"

आयषा ने कहा—"जी नहीं, मैं फिर कुँअर साहिब के पास लौट आऊँगी ।

उसमान ने कहा—"आयषा! तुम्हारे वस्फों की हद नहीं है। तुम इस दुश्मने जानी को जैसी खिदमत कर रही हो, वैसी तो बहिन भी भाई की नहीं करती। तुम उसे ज़िन्दगी बख़्श रही हो।"

आयषा ने भुवनमोहन मुख से हँस कर कहा—"उसमान! मेरी तो सरिश्त ही औरत की है, आफ़तज़दः की खिदमत करना तो हमारा फ़र्ज़ ही है, बलिक न करने से अज़ाब होता है, करने में कोई तारीफ़ नहीं; मगर शाबाशी है तुम्हें! जो शख़्स तुम्हारा जानी दुश्मन है, मैदाने जङ्ग में तुम्हारा ज़ोम तोड़नेवाला मुक़ाबिल, जिस की यह हालत अपने ही हाथों से की है, तुम खुद शबो रोज़ मुस्तैद रह कर उसकी खिदमत कराते हो, उस के सिहत की कोशिश कर रहे हो, इस से तुम अलबत्तः काबिलेतारीफ हो।"

उसमान ने कुछ अप्रतिभ सो होकर कहा—"तुम आयषा, अपने उम्दः मिजाज सा सब को देखती हो। मेरा इन्दियः उतना उम्दः नहीं है। तुम देखती नहीं जगत सिंह के बच जाने से हम लोगों का कितना बड़ा फायदा है? इनके इस वक़्त मरने का क्या नतीजा होगा। जानती हो? मैदानेजङ्ग में मानसिंह जगतसिंह से कम नहीं हैं। एक बहादुर के बदले दूसरा बहादुर आवैगा। मगर कहीं जगतसिंह ज़िन्दः रह कर हम लोगों के कैद में रहै तो गोया मानसिंह हमारे हाथ आ गए। वह अपने लख़्ते जिगर की रिहाई के लिए ज़रूर हम लोगों के फ़ायदे की सुलह कर लेंगे, अकबर भी ऐसे लायक़ सिपहसालार के वापस पाने के लिए सुलह की ओर रुजू हो सकता है। और अगर जगतसिंह को

अपनी उम्दः सुलूक से ममनून कर सकें, तो वह भी हमारे हस्ब-ख्वाह सुलह के लिए ज़ोर दे सकते हैं या कोशिश कर सकते हैं, और उनकी कोशिश बिल्कुल ही बेकार नहीं हो सकती। अगर कुछ भी नतीजा न हो तो भी जगतसिंह की रिहाई के एवज़ में मानसिंह से ज़र कसीर जुरूर मिलैगा। मुकाबिले की लड़ाई में एक दिन के लिए फतह पाने से बढ़ कर फायदा हम लोगों को जगतसिंह के ज़िन्दः रहने में है।"

उसमान यह सब आलोचना करके राजपुत्र के पुनर्जीवन में यत्नवान् हुए थे इसमें संदेह नहीं, परन्तु और भी कुछ कारण था। किसी किसी को ऐसा अभ्यास होता है, कि कहीं लोग दयालुचित्त न कहैं, इस लज्जा की आशङ्का से कठिनता प्रकाश करते हैं, और दयाशीलता नारी स्वभावसिद्ध कहकर उपहास करते २ भी परोपकार करते हैं। लोगों के पूछने पर कह देते हैं कि इस में हमारा बड़ा भारी प्रयोजन है। आयषा भली भांति जानती थी कि उसमान उन्हीं में से एक है। हंसते हंसते कहा—उसमान, गोया सभी लोग तुम्हारे तरह खुदग़रज़ी में होशियार होते हैं। अगर ऐसा होता तो कारे और से कुछ काम ही न रहता।

उसमान ने थोड़ी देर तक इतस्ततः कर के मृदुतर स्वर से कहा—"आयषा, हम अपनी खुदग़रज़ी का और भी एक सुबूत देते हैं।"

आयषा ने अपनी विद्युत् सहित मेघ तुल्य आंखें उसमान की ओर स्थिर कर दीं।

उसमान कहने लगा—"जिस उम्मेद के शजर को हम पकड़े हैं उसे कब तक सींचना पड़ैगा?"

आयषा की मुखश्री गम्भीर हो गई। उसमान इस भावान्तर में भी एक नूतन सौन्दर्य देखने लगा। आयषा ने कहा-"उसमान! भाई बहिन समझ कर तुम्हारे साथ निशस्त बर्खास्त रखती हूं; तजावज़ करने से, कभी तुम्हारे सामने भी न हूंगी।

उसमान का हर्षोत्फुल्ल मुख मलिन हो गया—बोला—"यह बात हमेशः ही की है! खुदाबन्दा! तुमने इस गुलबदन के अन्दर क्या दिले सङ्गी गढ़ कर रख दिया है?"

उसमान आयषा को मातृगृह तक पहुंचा कर उदासी से अपने आवासगृह को लौट आया।

और जगतसिंह?

विषमज्वर के विकार में अचेत होकर पलङ्ग पर पड़े हैं।

S. B.

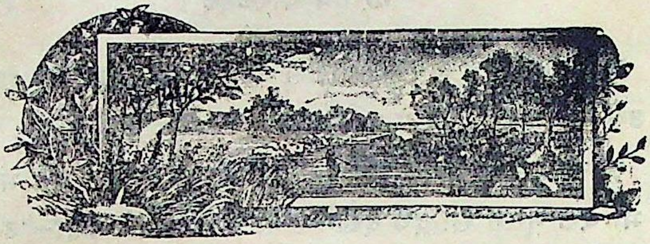

तृतीय परिच्छेद ।

तुम क्या तिलोत्तमा नहीं हो ?

दूसरे दिन सन्ध्या समय जगतसिंह के अवस्थान कक्ष में आयषा, उसमान, और हकीम पूर्ववत् निःशब्द बैठे हैं; आयषा पलङ्ग पर बैठी अपने हाथ से पङ्खा झल रही है; हकीम दम पर दम जगतसिंह की नाड़ी देख रहे हैं; जगतसिंह अचेत हैं, हकीम ने कहा था कि आज ही की रात ज्वर उतरने के साथ इन के लय होने की सम्भावना है, यदि वह समय निकल जाय तो फिर कोई चिन्ता नहीं, निश्चय बच जायगे। ज्वर विश्राम का समय आ पहुंचा है, इसी से सब व्यग्र हैं। हकीम बेर २ नाड़ी देखते हैं "नब्ज़ कमज़ोर होती जाती है" "और भी कमज़ोर हुई" "कुछ तेज़ हुई" इत्यादि मुहुर्मुहुः धीरे धीरे कहते सहसा हकीम का मुख श्याम हो गया, बोले—"वक्त आ गया।"

आयषा और उसमान पुतली की भांति हो कर सुनने लगे। हकीम नाड़ी धरे बैठे हैं।

थोड़ी देर पीछे हकीम ने कहा—"तरीका खराब है।" आयषा का मुहं और भी सूख गया। हठात् जगतसिंह के मुख पर विकट-भङ्गी उपस्थित हुई, मुंह श्वेतवर्ण हो चला, हाथ की मुट्ठी दृढ़ बन्ध गई, आंखें अलौकिक भाव से घूमने लगीं, आयषा ने समझा—अब यमग्रास होने में देर नहीं है। हकीम हाथ में औषधि पात्र लिये बैठे थे, ऐसा लक्षण देखते ही उंगली से दांत उभाड़ कर औषधि खिला दिया। औषधि ओठ के किनारे से बाहर गिर गई; थोड़ी सी पेट में गई। पेट में उतरते ही रोगी की अवस्था बदलने लगी, क्रम से मुख की विकटभङ्गी दूर हो कर कान्ति स्थिर हुई, वर्ण की अस्वाभाविक श्वेतता परिवर्तित होकर रक्तसञ्चार होने लगा, मुठी ढीली हुई, आंखें स्थिर होकर फिर बन्द हो गईं। हकीम जी अत्यन्त एकाग्र चित्त हो नाड़ी देखने लगे। बड़ी देर तक देख कर हर्ष पूर्वक कहा—'कुछ पर्वा नहीं, अब बच गए।"

उसमान ने पूछा—"बुखार उतर गया?"

हकीम ने कहा—"उतर गया।"

आयषा और उसमान दोनों का मुख प्रफुल्ल हो गया। हकीम ने कहा—"अब कोई तरद्दुद नहीं है, हमारे बैठे रहने की ज़रूरत नहीं है, यह दवा निसफ़शब तक घड़ी २ भर पर खिलाइएगा।" यह कह कर हकीम जी चले गए। उसमान भी दो चार दण्ड और रह कर अपने आवासगृह को चले गए। आयषा पूर्ववत् पलङ्ग पर बैठी औषधादि सेवन कराने लगी।

रात्रि में दो पहर के कुछ पूर्व ही राजकुमार ने आंख खोली। प्रथमही प्रथम आयषा का सुख प्रफुल्ल मुख दिखाई दिया। चक्षु

का कटाक्षभाव देखकर आयषा ने समझा कि इन्हें बुद्धि भ्रम सा हो रहा है, मानो वह कुछ स्मरण करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु यत्न विफल होता है। बड़ी देर तक आयषा की ओर देखकर कहा—"हम कहां हैं ?" दो दिन पीछे राजकुमार यह पहिले ही पहिल बोले थे।

आयषा ने कहा—"कुतलू खां के किले में।"

राजपुत्र फिर पूर्ववत् स्मरण करने लगे, बड़ी देर पीछे पूछा—"हम यहां क्यों हैं ?"

पहिले तो आयषा चुप रही, फिर कहा—"आप बीमार हैं।"

राजपुत्र ने सोचते २ सिर हिलाकर कहा—"नहीं नहीं, हम बंदी हैं।"

यह कहते हुए राजपुत्र के मुख का भावांतर हो गया।

आयषा ने कुछ उत्तर न दिया; देखा राजपुत्र की स्मृतिक्षमता पुनरुद्दीप्त हो रही है।

क्षणभर पीछे राजपुत्र ने फिर पूछा—"तुम कौन हो ?"

"हम आयषा हैं।"

"कौन आयषा ?"

"कुतलू खां की बेटी।"

राजपुत्र फिर थोड़ी देर चुप रहे; एकबारगी अधिक क्षण तक बोलने की शक्ति नहीं है। थोड़ी देर तक विश्राम करने पर कहा—"हम को यहां आए कै दिन हुए ?"

"चार दिन।"

"गढ़ मान्दारन अब तक तुम लोगों के अधिकार में है ?"

"जी हां।"

जगतसिंह ने फिर विश्राम करके कहा—'वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ?'

"वीरेन्द्रसिंह कैदखाने में बन्द हैं, आज उन का फ़ैसला होगा।"

जगतसिंह का मलिन मुख और भी मलिन हो गया। पूछा—"और सब नगरनिवासी किस दशा में हैं?"

आयषा ने उद्विग्ना होकर कहा—"पूरा हाल हम को मालूम नहीं है।"

राजपुत्र ने आप ही आप न जानें क्या कहा। एक नाम उनके मुख से निकला, आयषा ने उसे सुन लिया।

"तिलोत्तमा।"

आयषा धीरे धीरे उठकर पात्र में से हकीम की दी सुस्वादु औषधि लाने गई; राजकुमार उस के दोलायमान कर्णाभरण संयुक्त अलौकिक देह की महिमा देखने लगे। आयषा औषधि लाई, राजपुत्र ने उसे पान करके कहा—

"मैं पीड़ा के मोह में स्वप्न देख रहा था, स्वर्गीय देवकन्या हमारे सिरहाने बैठी शुश्रूषा कर रही है: वह तुम थीं कि तिलोत्तमा थी?"

आयषा ने कहा—"आप ने तिलोत्तमा को ख़ाब में देखा होगा।"

———

चतुर्थ परिच्छेद ।

अवगुण्ठनवती (घूंघटवाली) ।

दुर्गजय के दो दिन पीछे, प्रहर दिन चढ़ने के समय कुतलू खां अपने दर्बार में बैठे हैं। दोनों ओर श्रेणीबद्ध पारिषदगण खड़े हैं। सामने के मैदान में कई सहस्र मनुष्य निःशब्द खड़े हैं। आज वीरेन्द्रसिंह का विचार होगा।

शृंखलाबद्ध कई एक शस्त्रधारी प्रहरी वीरेन्द्रसिंह को दरबार में लाए। वीरेन्द्रसिंह की मूर्ति रक्तवर्ण थी, परंतु उस में भीति-चिन्ह लेशमात्र भी नहीं है। प्रदीप्त आंखों से आग की चिनगारियां निकल रही हैं, नासिकारंध्र बर्द्धित होकर कम्पित हो रहे हैं। दांत से ओंठ चबा रहे हैं। कुतलू खां के सामने आने पर कुतलू ने पूछा—" वीरेन्द्रसिंह ! तुम्हारे कुसूर का इन्साफ़ किया जाता है। तुम ने हमारे साथ मुखालिफ़त क्यों की थी ?"

वीरेन्द्रसिंह ने निज लोहित मूर्त्ति प्रकटित क्रोध को रोक कर कहा—"तुम्हारे विरुद्ध हमने कौन काम किया, पहिले हम को यह बतलाओ।"

एक पारिषद ने कहा—"अदब के साथ गुफ़्तगू करो।"

कुतलू खां ने कहा—"हमारे हुक्म के मुताबिक नक़्द और फ़ौज भेजने में क्यों इनकार किया था?"

वीरेन्द्रसिंह ने निर्भयमुद्रा से कहा—"तुम राजविद्रोही दस्यु हो, तुम्हें रुपया क्यों दें? और सेना क्यों भेजें?"

दर्शकों ने देखा, वीरेन्द्र अपना सिर आपही छेदन करने को उद्यत है।

कुतलू खां का शरीर क्रोध से कांप उठा। उस ने सहसा क्रोध संवरण करने का अभ्यास कर रक्खा था, इस से कुछ स्थिर भाव से कहा—"तुम ने हमारी हुकूमत में रहकर मुगलों की तरफ़कशी की?"

वीरेन्द्र ने कहा—"तुम्हारा अधिकार कहां है?"

कुतलू खां ने और भी क्रुद्ध होकर कहा—"सुन बदबख़्त, तू खुद कर्दः के लिए वाजिब सज़ा पाएगा। अब तक भी तेरी जिन्दगी की उमीद थी, मगर तू नाफ़हम है, नाहक़ अपनी शेखी में जान देने की कोशिश करता है।"

वीरेन्द्रसिंह ने दर्प के साथ हास्य कर के कहा—"कुतलू खां—जब कि हम तुम्हारे यहां बेड़ी डालकर लाए गए हैं, कुछ दया की प्रत्याशा कर के नहीं आए हैं, तुम्हारे ऐसे शत्रु की दया से जिस की जीवन रक्षा हो—उस के जीवन से क्या प्रयोजन? तुम्हें

आशीर्वाद करते हुए प्राण त्याग करते, परन्तु तुमने हमारे कुल में कालिख लगाया; तुमने हमारे प्राण से भी अधिक धन को—"

वीरेन्द्रसिंह और न कह सके, स्वरवद्ध हो गया, आंखें वाष्पाकुल हो गईं; निर्भीक गर्वित वीरेन्द्रसिंह सिर नीचा कर के रोने लगे।

कुतलू खां स्वभावतः निष्ठुर था, यहां तक निष्ठुर था कि परपीड़ा से उसे उल्लास होता। दाम्भिक बैरी की ऐसी अवस्था देखकर उस का मुख हर्षोत्फुल्ल हो गया। बोला—

"वीरेन्द्र सिंह! क्या तुम हम से कुछ भी ख़ाहिश न करोगे? ज़रा ग़ौर करके देखो, तुम्हारा वक़्त क़रीब है।"

जिस दुःसह सन्तापाग्नि से वीरेन्द्र सिंह का हृदय दग्ध हो रहा था, रोने से वह कुछ शमन हुआ। पूर्वापेक्षा स्थिर भाव से उत्तर दिया—"और कुछ नहीं चाहते, केवल यही भिक्षा कि हमारा वधकार्य शीघ्र समाप्त करो।"

कु०—ऐसा ही होगा। और कुछ?

उत्तर०—इस जन्म में और कुछ नहीं।

कु०—मरने के वक़्त अपनी बेटी से मुलाक़ात न करोगे?

यह प्रश्न सुन कर दर्शक लोग परिताप से निःशब्द हो गये। वीरेन्द्र की आंखों में फिर उज्ज्वलाग्नि जल उठी।

"यदि हमारी बेटी तुम्हारे घर में जीवित हो तो हम उस से भेंट न करेंगे, और यदि मर गई हो तो लाओ गोद में ले कर मरें।"

दर्शक गण सन्नाटे में थे, अगणित मनुष्यों की भीड़ ऐसी निस्तब्ध थी, कि सूई गिरने से भी शब्द सुनाई पड़ता। नव्वाब का

संकेत पा कर रक्षक लोग वीरेन्द्र सिंह को वध्यभूमि की ओर ले चले। वहां पहुँचने के कुछ पहिले एक मुसलमान ने वीरेन्द्रके कान में कुछ कहा, वीरेन्द्र ने कुछ न समझा। मुसलमान ने उस के हाथ में एक पत्र दिया। वीरेन्द्र ने सोचते २ उस पत्र को अन्यमनस्क भाव से खोलकर देखा कि विमला के अक्षर हैं। वीरेन्द्र ने अत्यन्त विरक्ति के साथ उसे ममोड़ कर दूर फेंक दिया। पत्रवाहक पत्र उठा कर चल दिया। निकटस्थ किसी दर्शक ने वीरेन्द्र के इस कर्म को देखकर दूसरे दर्शकसे कहा—"जान पड़ता है लड़की की चिट्ठी थी।"

यह वाक्य वीरेन्द्र सिंह के कान तक पहुंचा, उधर उलट कर कहा—"कौन हमारी कन्याका नाम लेता है? हमें कन्या नहीं है।"

पत्रवाहक पत्र लेकर चला गया, रक्षकों से कहता गया—

"जब तक हम न आवैं इन्तिजार करना।"

रक्षकों ने कहा—"जो हुक्म खुदावन्द।"

स्वयं उसमान पत्रवाहक थे, इसी से रक्षकों ने खुदावन्द कह कर सम्बोधन किया।

उसमान पत्र लिए अन्तः पुर गए। वहां एक वृक्ष के नीचे एक अवगुण्ठनवती स्त्री खड़ी थी। उसमान ने उस के पास जाकर चारों ओर देख कर जो जो हुआ था सब कह सुनाया। अवगुण्ठनवती ने कहा—"आप को बहुत क्लेश देती हूं, किन्तु आप ही के हाथ से हम लोगों की यह दशा हुई है। आप को हमारा यह काम साधन करना ही होगा।"

उसमान निस्तब्ध रहा।

अवगुण्ठनवती मनःपीड़ा विकम्पित स्वर से बोली—"न कीजिए—नहीं सही—हम लोग इस समय अनाथ हैं। किन्तु जगदीश्वर हैं।"

उसमान ने कहा—"मा! तुम नहीं जानतीं कि कैसे मुश्किल काम का बोझ हम पर दे रही हो। क़तलू ख़ां को मालूम होगा तो हमें जान से मार डालेगा।

स्त्री ने कहा—"कुतलु खां? कुतलू खां की साध्य नहीं है कि तुम्हारा बाल भी छू सके, हम से प्रवञ्चना क्यों करते हो?"

उ०—कुतलू खां को तुम नहीं पहिचानतीं—अच्छा चलो हम तुम्हें सूली की जगह ले चलते हैं।

उसमान के पीछे २ जा कर अवगुण्ठनवती वध्यभूमि में खड़ी हो गई। वीरेन्द्र सिंह उसे न देख कर एक भिखारी वेशधारी ब्राह्मण से बात कर रहे थे। अवगुण्ठनवती ने घूंघट से देखा कि अभिराम स्वामी हैं।

वीरेन्द्र ने अभिराम स्वामी से कहा—"गुरु देव! तो अब बिदा होते हैं। अब हम आप से क्या कह जायँ? इस लोक में अब हमें कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है। किस के लिए प्रार्थना करैं?"

अभिराम स्वामी ने उंगली से पीछे खड़ी हुई घूंघटवाली को दिखलाया। वीरेन्द्र सिंह ज्यों उसकी ओर फिरे, त्योंही रमणी घूंघट हटा कर उन के शृङ्खलाबद्ध पैरों पर गिर कर लोटने लगी। वीरेन्द्र ने गद् गद स्वर से पुकारा—"विमले!"

"स्वामिन्! प्रभो! प्राणेश्वर!" कहते २ उन्मादिनी की नाईं विमला और भी उच्च स्वर से कहने लगी।

"आज मैं संसार के सामने कहूंगी, मुझे कौन रोक सकता है? स्वामिन्! कण्ठरत्न! कहां जाते हो? हम लोगों को कहां छोड़े जाते हो?"

वीरेन्द्र सिंह की आँख से अश्रुधारा का तार बन्ध गया। हाथ पकड़ कर विमला से कहा—

"विमले! प्राण प्रिये! इस समय हमें क्यों रुलाती हो? शत्रुगण देखेंगे तो हमें मरने में भीत समझेंगे।"

विमला चुप हो गई। वीरेन्द्र ने फिर कहा—

"विमले! हम जाते हैं, तुम लोग हमारे पीछे २ आओ।"

विमला ने कहा—"आवैंगी।"

और कोई न सुनै ऐसे स्वरसे कहा—"आवैंगी, पर पहिले इस ऋणा का बदला चुका लें।"

बुझते हुए प्रदीप की भांति वीरेन्द्र का मुख हर्ष से प्रफुल्लित हो गया—बोले—"चुका सकोगी?"

विमला ने दाहिना हाथ दिखाकर कहा—"इसी हाथ से! इस हाथ के गहिनों को त्याग करती हूं; अब इन गहिनों से कौन काम है?" यह कह कर कङ्कणादि उतार कर दूर फेंकते २ कहने लगी-"तीक्ष्ण लोह के सिवाय अब इस हाथ में अलङ्कार कभी न धारण करूंगी।"

वीरेन्द्र सिंह ने हर्षपूर्वक कहा—"तुम से सब हो सकैगा। जगदीश्वर तुम्हारी मनस्कामना पूरी करैं।"

जल्लाद ने पुकारा—"अब नहीं ठहर सकते।"

वीरेन्द्र ने विमला से कहा—"अब क्या है? अब तुम जाओ।"

अवगुण्ठनवती मनःपीड़ा विकम्पित स्वर से बोली—"न कीजिए—नहीं सही—हम लोग इस समय अनाथ हैं। किन्तु जगदीश्वर हैं।"

उसमान ने कहा—"मा! तुम नहीं जानतीं कि कैसे मुश्किल काम का बोझ हम पर दे रही हो। क़तलू ख़ां को मालूम होगा तो हमें जान से मार डालेगा।

स्त्री ने कहा—"कुतलु खां? कुतलू खां की साध्य नहीं है कि तुम्हारा बाल भी छू सकै, हम से प्रवञ्चना क्यों करते हो?"

उ०—कुतलू खां को तुम नहीं पहिचानतीं—अच्छा चलो हम तुम्हें सूली की जगह ले चलते हैं।

उसमान के पीछे २ जा कर अवगुण्ठनवती वध्यभूमि में खड़ी हो गई। वीरेन्द्र सिंह उसे न देख कर एक भिखारी वेशधारी ब्राह्मण से बात कर रहे थे। अवगुण्ठनवती ने घूंघट से देखा कि अभिराम स्वामी हैं।

वीरेन्द्र ने अभिराम स्वामी से कहा—"गुरु देव! तो अब बिदा होते हैं। अब हम आप से क्या कह जायँ? इस लोक में अब हमें कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है। किस के लिए प्रार्थना करैं?"

अभिराम स्वामी ने उंगली से पीछे खड़ी हुई घूंघटवाली को दिखलाया। वीरेन्द्र सिंह ज्यों उसकी ओर फिरे, त्योंही रमणी घूंघट हटा कर उन के शृङ्खलाबद्ध पैरों पर गिर कर लोटने लगी। वीरेन्द्र ने गद् गद स्वर से पुकारा—"विमले!"

"स्वामिन्! प्रभो! प्राणेश्वर!" कहते २ उन्मादिनी की नाईं विमला और भी उच्च स्वर से कहने लगी।

"आज मैं संसार के सामने कहूंगी, मुझे कौन रोक सकता है? स्वामिन्! कण्ठरत्न! कहां जाते हो? हम लोगों को कहां छोड़े जाते हो?"

वीरेन्द्र सिंह की आँख से अश्रु धारा का तार बन्ध गया। हाथ पकड़ कर विमला से कहा—

"विमले! प्राण प्रिये! इस समय हमें क्यों रुलाती हो? शत्रुगण देखेंगे तो हमें मरने में भीत समझेंगे।"

विमला चुप हो गई। वीरेन्द्र ने फिर कहा—

"विमले! हम जाते हैं, तुम लोग हमारे पीछे २ आओ।"

विमला ने कहा—"आवेंगी।"

और कोई न सुनै ऐसे स्वरसे कहा—"आवेंगी, पर पहिले इस ऋणा का बदला चुका लें।"

बुझते हुए प्रदीप की भांति वीरेन्द्र का मुख हर्ष से प्रफुल्लित हो गया।—बोले—"चुका सकोगी?"

विमला ने दाहिना हाथ दिखाकर कहा—"इसी हाथ से! इस हाथ के गहिनों को त्याग करती हूं; अब इन गहिनों से कौन काम है?" यह कह कर कङ्कणादि उतार कर दूर फेंकते २ कहने लगी-"तीक्ष्ण लौह के सिवाय अब इस हाथ में अलङ्कार कभी न धारण करूंगी।"

वीरेन्द्र सिंह ने हर्षपूर्वक कहा—"तुम से सब हो सकैगा। जगदीश्वर तुम्हारी मनस्कामना पूरी करैं।"

जल्लाद ने पुकारा—"अब नहीं ठहर सकते।"

वीरेन्द्र ने विमला से कहा—"अब क्या है? अब तुम जाओ।"

विमला ने कहा—"नहीं! हमारे सामने ही हमारा वैधव्य हो। तुम्हारे रुधिर में अपने संकोच को विसर्जन करूंगी।"

विमला का स्वर भयंकर स्थिर था।

"अच्छा, ऐसा ही सही" कह कर वीरेंद्र सिंह ने जल्लाद को संकेत किया। विमला ने देखा—ऊपर उठाया हुआ कुठार सूर्य के तेज में चमक उठा। उसकी आंख की पलक क्षण मात्र के लिए आप ही बन्द हो गई, आंख खोलकर फिर जो देखा तो वीरेंद्र सिंह का छिन्न सिर रुधिरसिक्त धूल में लोट रहा है।

विमला पत्थर की मूर्तिवत् खड़ी रही, सिर का एक बाल भी हवा में नहीं हिलता, एक बूंद आंसू भी नहीं गिरता, पलक नहीं झपकती, एक दृष्टि से छिन्न सिर की ओर देख रही है।

This book is full with fuckin fucking with

पंचम परिच्छेद ।

विधवा ।

तिलोत्तमा कहां है ? पितृहीना, अनाथिनी वालिका कहां है ? विमला ही कहां है ? कहां से आकर विमला ने वध्यभूमि में स्वामी का दर्शन किया था? वहां से फिर कहां गई ?

मरने के समय वीरेन्द्रसिंह ने प्रियतमा कन्या से क्यों भेंट नहीं की ? और क्यों नाम सुनते ही अग्नि सदृश जल उठे थे ? क्यों कहा था—"हमें कन्या नहीं है।" विमला का पत्र विना पढ़े ही क्यों दूर फेंक दिया ?

क्यों ? कुतलू खां के प्रति वीरेन्द्रसिंह का तिरस्कार स्मरण करके विचारो, कैसा भयानक काम हुआ था।

"हमारे पवित्रकुल में कालिख लगाया।" कह कर शृंखलाबद्ध व्याघ्र ने गर्जन किया था।

पूछते हो, कि विमला और तिलोत्तमा कहां हैं? अच्छा कुतलूखां की उपपत्नियों के निवासगृह में ढूंढ़ो, वहीं मिलेंगी।

संसार की यही गति है! अदृष्ट चक्र का ऐसा ही दारुण फेर फार है! रूप, यौवन, सरलता, अमलता, सभी इस चक्र के गर्भ में पड़कर पिसायमान हो जाते हैं।

कुतलूखां का यह नियम था कि जो दुर्ग जय होता, उस में जो सुन्दरी स्त्री बंदी होतीं वह सब उस की निज सेवा के लिए प्रेषित होतीं। गढ़ मान्दारन के जय होने के दूसरे ही दिन कुतलू खां वहां पहुंच कर बंदी लोगों के रहने आदि के प्रबंध और भविष्यत् में दुर्ग की रक्षा और देखभाल के लिए सेना नियत करने में लगे। बन्दी लोगों में विमला और तिलोत्तमा को देखते ही अपने विलासगृह को सजाने के लिए उन लोगों को भेज दिया। उस के उपरांत और और आवश्यक कामोंमें व्यस्त रहे। ऐसा सुना था कि राजपूत सेना अपने स्वामी जगत सिंह का बन्धन सुन कर कहीं पास ही आक्रमण करने के उद्योग में है, अतएव उन लोगों के जीतने के लिए उचित व्यवस्था में लगे हुए थे। इस से नूतन दासियों के साथ सुखलाभ करने का अवसर कुतलू खां को न मिला।

विमला और तिलोत्तमा अलग अलग घरों में रक्खी गई थीं। जहां पितृहीना नवीना की धूलि धूसरित देहलता पृथ्वी पर पड़ी है, पाठक! वहां दृष्टिपात करने का काम नहीं है। क्या काम? तिलोत्तमा के प्रति अब कौन दृष्टिपात करता है? वसंतागम में जिस समय नवपल्लव मन्द वायु के हिलोरे से धुलते रहते हैं, उस समय ऐसा कौन है जो सुवास के लोभ से उस के पास नहीं खड़ा होता? और जब ग्रीष्म ऋतु की लूह से अवलम्बित वृन्त सहित

भूतलशायिनी होती है उस समय गिरे हुए पदार्थों में से वृक्ष को छोड़ कर लता पर कौन दृष्टि करता है? लकड़हारे लकड़ी काट कर ले जाते हैं और लता को केवल पैर के नीचे मल देते हैं।

चलो, तिलोत्तमा को छोड़कर अन्यत्र चलें। जहां चंचला, चतुरा, रसप्रिया, रसिका, विमला के बदले गम्भीरा, अनुतापिता, मलिना, विषन्ना आंख को अंचल से ढांके बैठी हैं वहां चलें।

क्या यही विमला है? उस का वह केशविन्यास नहीं है। सिर धूल से भरा है, वह कामदानी की ओढ़नी नहीं है, वह रत्नखचित कंचुकी नहीं है, बदन अत्यन्त मलिन हो रहा है। कपड़ा जीर्ण, बहुत छोटा पहिरे है। वह सब अलंकारभार कहां है? वह स्कन्ध स्पर्श लोभी कर्णाभरण कहां है? आंखें क्यों फूल आई हैं? वह कटाक्ष कहां गया? सिर में चोट क्यों है? रुधिर क्यों बह रहा है?

विमला उसमान की प्रतीक्षा कर रही थी।

उसमान पठानकुलतिलक था। युद्ध तो उन का स्वार्थसाधन और व्यवसाय तथा धर्म ही था, इस से युद्ध जय के लिए उसमान किसी काम के करने में संकोच न करते। किन्तु युद्ध प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर पराजित पक्ष के प्रति तिल मात्र भी कदाचित् कोई अत्याचार निष्प्रयोजन न होने देते। यदि कुतलू खां विमला और तिलोत्तमा के प्रति स्वयं यह दारुण विधान न करते तो उसमान की कृपा से यह लोग कदापि बन्दी न होतीं; उन्हीं की कृपा से मृत्युसमय में स्वामी का दर्शन विमला को मिला था। पीछे से जब उसमान ने जाना कि विमला वीरेंद्रसिंह की स्त्री है,

तब तो उस का दयार्द्र चित्त और भी आर्द्र हो गया। उसमान कुतलू खां का भ्रातुष्पुत्र * था। इस से अंतःपुर में जाने की भी उस की कहीं रोक न थी; यह पहिले ही देखा जा चुका है, जिस विलासगृह में कुतलू खां की उपपत्नियां रहती थीं, वहां न कुतलू खां के बेटे ही जाने पाते न उसमान ही। किन्तु उसमान कुतलू खां का दाहिना हाथ था, उसमान ही के बाहुबल से उस ने दामोदरतीर तक उत्कल देश पर अधिकार किया था। इस से नगर निवासी लोग प्रायः कुतलू खां के सदृश ही उसमान को भी मानते थे। इसी से आज सवेरे विमला के प्रार्थनानुसार, अंतकाल में स्वामी का दर्शन हुआ था।

वैधव्य घटना के दो दिन पीछे विमला के पास जो कुछ अलंकारादि बचे थे वे सब कुतलू खां की नियोजित दासी को दिया। दासी ने पूछा—"हमें क्या हुक्म होता है?"

विमला ने कहा—"जैसे कल्ह तुम गई थी वैसे ही आज भी उसमान के पास जाओ; कहना कि मैं एक बेर और आप से भेंट करने की प्रार्थी हूं और कह देना कि यही शेष भेंट है, फिर तीसरी बेर प्रार्थना न करूंगी।"

दासी ने वैसा ही किया। उसमान ने कहला भेजा—"उस महल में आने से हम पर और उन पर दोनों पर आफ़त है, उन्हें हमारे घर आने को कह देना।"

विमला ने पूछा—"हम कैसे जायं?" दासी ने कहा—"उन्हों ने कहा है कि हम इस का उपाय कर देंगे।"

---

* इतिहास में लिखा है पुत्र था।

संध्या के पीछे आयषा की एक दासी आकर अन्तःपुर रक्षक खोजा लोगों से कुछ कह कर, विमला को अपने साथ उसमान के पास लिवा ले गई।

उसमान ने कहा—"तुम्हारी और कौन खि़दमत हम कर सकते हैं?" विमला ने कहा—"बहुत ही सामान्य एक काम है; राजपूत कुमार जगत सिंह जीवित हैं?"

उसमान—"हां, ज़िन्दः है।"

वि०—"स्वाधीन हैं कि बन्दी हैं?"

उस०—"हैं तो कैद ही, मगर इस वक्त जेलख़ाने में नहीं हैं। उन के बदन में जो सब ज़ख्म हैं उन्हीं के इलाज के लिए पलङ्ग पर लेटे हैं।"

विमला ने सुन कर कहा—"हम अभागिनियों के सम्पर्क मात्र ही से यह सब अमङ्गल घटना घटी; दैवेच्छा! अब यदि राजकुमार बच जायं, तो अच्छे होने पर यह पत्र उनको दे दीजिएगा। तब तक अपने पास रहने दीजिए। बस, यही हमारी भिक्षा है।

उसमान ने पत्र लौटा कर कहा—"यह हमारे लिए बेजा कार्रवाई है। राजकुंअर चाहे जिस हालत में हों मगर वह हैं कैदी ही; कैदियों के पास कोई काग़ज़ हम लोग बग़ैर खुद पढ़े हुए जाने देना मुनासिब नहीं समझते और हमारे मालिक के हुक्म के भी खि़लाफ़ है।"

विमला ने कहा—"इस पत्र में आप लोगों की अनिष्ट करनेवाली कोई बात नहीं है, इस से यह अनुचित न होगा। और प्रभु की आज्ञा क्या? आप स्वयं प्रभु हैं।"

उसमान ने कहा—"और बारे में हम अपने चचा जान के हुक्म के ख़िलाफ़ कुछ कर भी सकते हैं, मगर इस बारे में हर्गिज़ नहीं। आप जब कि फ़र्माती हैं कि इसमें कोई बात हम लोगों के ख़िलाफ़ नहीं है उस पर हमको यक़ीन है, मगर इस बारे में क़ायदः के ख़िलाफ़ नहीं कर सकते। हम से यह काम नहीं हो सकता।"

विमला ने उदास हो कर कहा—"अच्छा तो आप पढ़ही कर दे दीजिएगा।"

उसमान पत्र ले कर पढ़ने लगा।

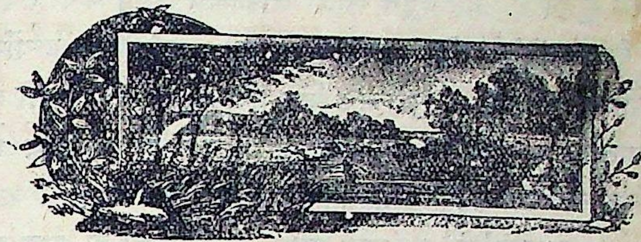

षष्ठ परिच्छेद ।

विमला का पत्र ।

युवराज ! मैंने आप से प्रतिज्ञा की थी कि कभी आप को अपना परिचय दूंगी । सो वह समय उपस्थित हुआ है ।

आशा की थी कि मेरी तिलोत्तमा जब अम्बर के सिंहासन पर बैठेंगी तब परिचय दूंगी; वह सब भरोसा आशा निर्मूल हो गई । जान पड़ता है कुछ दिन पीछे सुनिएगा कि इस संसार में न कोई तिलोत्तमा है न विमला । हम लोगों की आयु शेष हो आई है ।

इसी से इस समय आप को यह पत्र लिखती हूं । मैं महा पापीयसी हूं, बहुतेरे अनुचित कार्य किए हैं, मरने पर लोग बहुत कुछ निन्दा करेंगे, कितनी बुरी बातें कहेंगे, उस समय कौन हमारे घृणित नाम से कलंक की कालिमा मिटावैगा ? ऐसा कौन सुहृद है ?

एक सुहृद हैं, वह बहुत शीघ्र लोकालय छोड़ कर तपस्या करने को जायंगे। अभिराम स्वामी के द्वारा दासी का कार्योद्धार न होगा। राजकुमार ! मुझे एक दिन भरोसा था कि मैं भी आप के आत्मीय स्वजनों में गिनी जाऊंगी। एक दिन के लिए आप हमारे आत्मीय के सदृश काम कीजिए। यह बात किस से कहती हूं ? हम अभागिनियों का मन्द भाग्य अग्निशिखा के समान है, जो बन्धु पास थे, उन्हें भी लपट लग गई। जो हो, दासी की यह भिक्षा स्मरण रखिएगा। जब लोग कहें विमला कुलटा थी, दासी के वेश में गणिका थी, तब कहिएगा—विमला नीच जाति सम्भवा थी; विमला मन्दभागिनी थी, विमला दुःशासित रसना के दोष से सौ अपराध की अपराधिनी थी, परन्तु विमला गणिका नहीं थी; जिन्हों ने इस समय स्वर्ग में गमन किया है, उन्हों ने विमला के भाग्य के बल से शास्त्रविहित विमला का पाणिग्रहण किया था। विमला एक दिन भी अपने प्रभु के सामने अविश्वासिनी नहीं थी।

इतने दिनों तक यह बात प्रकाश नहीं थी अब इसे कौन विश्वास करैगा ? और क्यों पत्नी हो कर मैं दासीवत् रहती थी सो सुनिए—

गढ़ मान्दारन के पास किसी गांव में शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे। शशिशेखर एक सम्पन्न ब्राह्मण के पुत्र थे, यौवन काल में यथारीति विद्याध्ययन किया था। किन्तु पढ़ने से स्वभाव दोष दूर नहीं होता। जगदीश्वर ने शशिशेखर में सब गुण होने पर भी एक प्रबल दोष रख दिया था, वह दोष यौवन काल का दोष था

गढ़ मान्दारन में जयधर सिंह के अनुचरों में से किसी के वंश में एक पति विरहिणी स्त्री थी। उस का सौन्दर्य अलौकिक था, उस का पति राजसेना में सिपाही था, इस से बहुत दिन से विदेश में रहता था। वह सुन्दरी शशिशेखर के नैनपथ की पथिक हुई। थोड़े ही काल में उन के औरस से पति विरहिता को गर्भ रह गया।

अग्नि और पाप बहुत दिन तक गुप्त नहीं रहता। शशिशेखर का दुष्कर्म उन के पिता के कान तक पहुंचा। पुत्रकृत पर कुल कलंक मिटाने के लिये शशिशेखर के पिता ने सम्वाद देकर गर्भवती के स्वामी को झटपट घर को लौटाया। अपराधी बेटे को बहुत कुछ भर्त्सना किया। कलंकित हो कर शशिशेखर देशत्यागी हो गये।

शशिशेखर पितृ गृह छोड़ कर काशी गए। वहां किसी सर्ववित् दंडी की विद्या की ख्याति सुनकर उन के पास विद्याध्ययन आरंभ किया। बुद्धि अत्यंत तीक्ष्ण थी ही, दर्शनादि में अत्यन्त निपुण हो गए। ज्योतिष में अद्वितीय महामहोपाध्याय हो गए। अध्यापक अत्यन्त संतुष्ट होकर पढ़ाने लगे।

शशिशेखर एक शूद्री के घर के पास रहते थे, शूद्री की एक युवती कन्या थी। ब्राह्मण की भक्ति के कारण युवती आहारीय प्रयोजन आदि शशिशेखर के घर का सब काम करदेती। मातृ पितृ के दुष्कर्म को ढाकना ही कर्तव्य है। अब अधिक क्या कहैं? शूद्री कन्या के गर्भ में शशिशेखर के औरस से ही इस अभागिनी का जन्म है।

यह सुनते ही अध्यापक ने छात्र से कहा—शिष्य! हमारे यहां दुष्कर्मी शिष्यों का अध्ययन नहीं होता, अब फिर कभी तुम काशी में मुख न दिखाना।

शशिशेखर ने लज्जित होकर काशी छोड़ी।

माता को दुश्चरित्रा समझ कर मातामह ने निकाल दिया।

दुःखिनी माता हमें लेकर एक कुटी में रहने लगी, शारीरिक परिश्रम करके जीवन बिताने लगी। दुःखिनी की ओर कोई उलट कर भी न देखता। पिता का भी कोई सम्वाद नहीं मिला। कई वर्ष पीछे, एक धनाढ्य पठान शीत काल में बंगदेश से दिल्ली जाते हुए काशी में आए। बहुत रात गए नगर में पहुंचने से रात काटने को कोई स्थान न मिला, उन केसाथ उन की बीबी और एक गोद में लड़का था। उन लोगों ने मा की कुटी के पास आकर कुटी में रात काटने की प्रार्थना करके कहा—इतनी रात के समय हिन्दू गांव में किसी ने हम लोगों को स्थान दिया नहीं, इस समय हम लोग इस बालक को लेकर कहां जायं? इससे ओस सह्य न होगी। हमारे साथ बहुत आदमी तो हैं नहीं, कुटी में गुज़र हो जायगी। हम तुम्हें यथेष्ट पुरस्कार देंगे। "वस्तुतः पठान किसी विशेष प्रयोजन से शीघ्रतामें दिल्ली जाते थे। उनके साथ केवल एक नौकर था। माता दरिद्रा तो थी ही, पर दयालु भी थी, चाहे धन के लोभ से हो, वा दया से हो, पठान को कुटीमें स्थान दिया। पठान रात काटने के लिये कुटी के एक कोने में दीपक बाल कर स्त्री और सन्तान सहित सो रहे—दूसरे कोने में हम लोग सोए।

इस समय काशी में बालक चोरों का बड़ा भय था, मैं उस समय केवल छ वर्ष की बालिका थी। सब बात स्मरण करके नहीं कह सकती, जैसे जैसे मा से सुना है वह कहती हूं।

रात को दीपक जल रहा था; एक चोर सेंध लगा कर पठान के बालक को चुराकर ले चला, मेरी नींद खुल गई, उस समय मैं ने चोर का काम देख लिया। चोर को बालक लेकर जाते देखकर मैं चिल्ला उठी। हमारे चिल्लानेसे सब की नींद खुल गई।

पठान की स्त्री बालक को बिछावन पर न देख कर चिल्ला उठी। उस समय चोर बालक को लेकर चारपाई के नीचे छिप गया था। पठान ने उसे बाल पकड़कर खींच लिया और बालक छीन लिया। चोर के बहुत गिड़गिड़ाने पर केवल उस का कान तलवार से काट कर छोड़ दिया।

यहां तक पत्र पढ़कर उसमान ने चिन्ता करते करते विमला से पूछा—"तुम्हारा नाम कभी और दूसरा भी था?"

विमला ने कहा—"था, पर यावनिक नाम समझ कर पिता ने उसे बदल दिया था।"

"क्या नाम था? माहरू?"

विमला ने विस्मित होकर पूछा—"आप ने कैसे जाना?"

उसमान ने कहा—"हमीं वह चुराए हुए लड़के हैं।"

विमला विस्मित हुई। उसमान फिर पत्र पढ़ने लगे।

"दूसरे दिन सवेरे बिदा होने के समय पठान ने माता से कहा—"तुम्हारी बेटी ने जो सुलूक हमारे साथ किया है इस वक्त उस के यवज़ देने का हमें मौका नहीं है। मगर तुम्हारी जो खाहिश

हो हम से कहो, हम दिल्ली जाते हैं, वहां से तुम्हें वह चीज़ भेज देंगे; अगर दौलत चाहो तो वह भी भेज दें।"

मा ने कहा—"हमें दौलत न चाहिए। अपनी मेहनत मजूरी से हमारा दिन अच्छी तरह कटता है—हां, अगर बादशाह के यहां तक आप की कुछ पैठ हो तो—"

यह बात पूरी न होते होतेही पठान ने कहा—"हां हां! खूब पैठ है, हम शाही दरबार में तुम्हारा काम बखूबी कर सकते हैं।"

मा ने कहा—"तो इस लड़की के बाप को खोज करके हमें खबर दीजिएगा।"

पठान प्रतिज्ञा कर गए। मा के हाथ में अशर्फी दिया पर मा ने लिया नहीं। पठान ने अपने प्रतिज्ञानुसार राजपुरुषों को पिता की खोज में नियुक्त किया। पर पता न लगा।

इस के चौदह वर्ष पीछे राजपुरुषों ने पता पाकर पूर्व प्रचारित राजाज्ञानुसार माता को सम्वाद दिया। पिता दिल्ली में थे। शशिशेखर भट्टाचार्य नाम बदल कर अभिराम स्वामी नाम रक्खा था। जब यह समाचार आया मा स्वर्गवास पाचुकी थीं। धर्मशास्त्र के अनुसार जिस का पाणिग्रहण किया है उसे यदि स्वर्ग मिल सकता है, मा को निःसन्देह स्वर्गवास मिला होगा।

पिता का सम्वाद पाने पर काशी में हमारा मन न लगा। संसार में केवल एक पिता ही तो वर्तमान थे; वही यदि दिल्ली में हैं तो, मैं काशी में रह कर क्या करूँगी? यह सोच कर मैं अकेली पिता के दर्शनार्थ चली; पहिले तो हमारे आने से पिता बहुत बिगड़े, परन्तु हमारे बहुत रोने और बिनती करने पर अपने पास

रह कर सेवा करने की आज्ञा दी। माहरू नाम बदल कर विमला नाम रक्खा। मैं पिता के यहां रह कर विधि पूर्वक पिता की सेवा करने में दत्त चित्त रही; जिस में वे तुष्ट हों ऐसे काम करनेलगी। स्वार्थ सिद्धि अथवा पितृ स्नेह की आकांक्षा से मैं ऐसा नहीं करती थी, वस्तुतः पितृ सेवा में मुझे आनन्द मिलता, पिता के सिवाय मुझे और कोई न था। मन में सोचती थी कि पितृ-सेवा के बराबर संसार में और कोई सुख नहीं है। पिता भी हमारी भक्ति देख कर, चाहे मनुष्य स्वभाव सिद्ध गुण के कारण हो, मुझे बहुत चाहने लगे। स्नेह समुद्रमुखी नदी के समान होता है, जितना ही प्रवाहित होता है उतनाही बढ़ता जाता है। जब हमारे सुख वासर का प्रभात हुआ था तब हमने समझा था कि पिता हमें कितना चाहते थे।

सप्तम परिच्छेद ।

विमला के पत्र की समाप्ति ।

मैं पहिले ही कह चुकी हूं कि गढ़ मान्दारन की एक दरिद्रा रमणी पिता के औरस से गर्भवती हुई थी। जो हमारे माता के भाग्य में घटा था वही उस के भी भाग्य में था। उस के गर्भ से भी एक लड़की जनमी, और थोड़े ही दिन पीछे कन्या की मा विधवा हो गई। वह भी हमारी माता की भांति, अपने शारीरिक परिश्रम से धन उपार्जन कर के कन्या प्रतिपालन करनेलगी। विधाता का यह नियम नहीं है कि जो जैसा समृद्ध होता है उसी में उस के उपयुक्त सामग्री उत्पन्न हो। पर्वत के पत्थर पर भी कोमल कुसुमलता उत्पन्न होती है, अंधेरी खान में भी उज्ज्वल रत्न उत्पन्न होते हैं। दरिद्रा के घर में भी अद्भुत सुन्दरी कन्या जन्मी। विधवा की कन्या गढ़ मान्दारन गांव में प्रसिद्ध सुन्दरी गिनी जाने लगी। काल पाकर सब का लय हो जाता है; काल पाकर विधवा के कलंक का भी लय हो

गया, विधवा की कन्या जारजा है यह बात प्रायः सभी लोग भूल गये, बहुत से लोग जानते भी न थे। दुर्ग में तो यह बात कोई भी न जानता, अब कहां तक कहैं ? वही सुन्दरी तिलोत्तमा की गर्भ धारिणी थी।

तिलोत्तमा जिस समय माता के गर्भ में थी, उसी समय इस विवाह के कारण हमारे जीवन की प्रधान घटना घटी। उसी समय पिता दामाद को साथ कुटी में लिवा लाए, हम से अपना शिष्य कह कर परिचय दिया, स्वर्गीय प्रभु के मुख से हम ने यथार्थ परिचय सुना।

जब से उन्हें देखा, तभी से अपना हृदय पराया हो गया, परन्तु अब किस प्रकार से उन सब बातों को आप से कहैं ? वीरेन्द्र सिंह को विदित हुआ कि बिना विवाह हमें लाभ नहीं कर सकते। पिता ने भी अनुभव से सब वृत्तांत जान लिया। एक दिन दोनों जनों में यों बातें हो रही थीं, मैं ने आड़ में से छिप कर सुना।

पिता ने कहा—"हम विमला को छोड़ कर कहीं रह नहीं सकते। हां, यदि विमला तुम्हारी धर्मपत्नी हो तो हम तुम्हारे पास रह सकते हैं; और यदि तुम्हारा यह अभिप्राय न हो—"

पिता की बात पूरी न होते होते ही स्वर्गीय देव ने कुछ रुष्ट होकर कहा—"महाराज ! शूद्री कन्या को कैसे व्याहैं ?"

पिता ने व्यङ्ग कर के कहा—"जारजा कन्या कैसे व्याही थी ?"

प्राणेश्वर कुछ खिसियाने से होकर बोले—"जब व्याह किया था तब यह नहीं जानते थे कि यह जारजा कन्या है। जान बूझ

कर शूद्री से कैसे ब्याह करें? और फिर आप की बड़ी कन्या जारजा होने पर भी शूद्री नहीं है।"

पिता ने कहा-"अच्छी बात है, तुम विवाह में असम्मत हुए। तुम्हारे आने जाने से विमला का अनिष्ट होता है, अब इस आश्रम में तुम्हारे आने का प्रयोजन नहीं। तुम्हारे घर ही पर हम से भेंट हुआ करैगी।"

उसी दिन से कुछ दिन तक उन्हों ने आना जाना बंद कर दिया। मैं चातकी की भांति प्रतिदिन उन के आगमन की प्रतीक्षा करती; परन्तु कुछ काल तक आशा निष्फल होती रही। जान पड़ता है, वह स्थिर न रह सके, फिर आने जाने लगे। इस से फिर से उन का दर्शन पाकर मैं उतनी लज्जाशीला न रह गई। पिता इसे ताड़ गए, एक दिन हमें बुला कर कहा—"हम ने अनाश्रम व्रत धारण किया है; सदा हमारा तुम्हारा सहवास नहीं हो सकता; हम स्थान स्थान में घूमने जायंगे, तब तुम कहां रहोगी?"

मैं पिता के विरह की आशंका से बहुत रोने लगी, कहा—"मैं तुम्हारे संग ही संग रहूंगी, और नहीं तो जैसे काशी में अकेली रहती थी वैसे ही यहां भी रहूंगी—"

पिता ने कहा—"नहीं, विमले! हम ने इस से उत्तम संकल्प किया है, अपने अनवस्थिति काल के लिए तुम्हारा सुरक्षक ठीक किया है। तुम्हें महाराज मान सिंह की नवोढ़ा रानी के साहचर्य में रहना होगा।"

मैंने रो कर कहा—"तुम हमें मत छोड़ जाओ।" पिता ने कहा—"नहीं, हम इस समय कहीं नहीं जाते, तुम इस समय मान सिंह के घर जाओ, हम यहीं रहेंगे ; नित्य तुम्हें देख आया करेंगे। तुम वहां कैसी रहती हो यह देख कर तब दूसरा विधान करेंगे।"

युवराज ! मैं तुम्हारे घर की पुरांगना हुई। पिता ने कौशल कर के हमें अपने दामाद की आंख की ओट किया।

युवराज ! मैं तुम्हारे पितृभवन में बहुत दिन तक पुर स्त्री हो कर रही थी किन्तु तुम हमें नहीं पहिचानते। उस समय केवल दशवर्ष के बालक थे। अम्बर के राज्य भवन में माता के पास रहते थे, मैं तुम्हारी नवविवाहिता विमाता के साहचर्य में दिल्ली में रहती। कुसुम माल की भांति महाराज मान सिंह के गले में अनेक स्त्रियों की माला गुथी रहती ; तुम क्या अपनी सब विमाताओं को पहिचानते हो ? योधपुर सम्भूता उर्मिला देवी की तुम्हें याद आती है ? उर्मिला के किन किन गुणों का तुम्हारे आगे परिचय दें ! वह हमें सहचारिणी दासी न समझतीं, हमें प्राणाधिका सहोदरा भगिनी की भांति मानतीं, उन्होंने हमें नाना-विद्याओं के सिखाने का ढर्रा लगाया, उन्हीं की कृपा से शिल्प-कार्यादि सीखा था। उन्हों ने स्वयं हमें पढ़ना लिखना सिखाया। यह जो कई एक पंक्ति लिख कर तुम्हें पत्र भेजती हूं, यह केवल तुम्हारी विमाता उर्मिला देवी की कृपा से—

सखी उर्मिला की कृपा से और भी गुरुतर काम हो गया। वह जैसे प्रीतिचक्षु से हमें देखतीं, वैसा ही महाराज के सामने परिचय देतीं। हमें संगीतादि में भी कुछ क्षमता हो गई थी, उसे

देख सुन कर भी महाराज को प्रीति होती, चाहे जिस तरह हो, महाराज मानसिंह हम को भी अपनी परिवारस्थों के समान समझते। वह हमारे पिता पर भक्ति रखते थे, पिता सदा हम से मिल आते।

उर्मिलादेवी के पास मैं सर्वांश में सुखी थी। केवल एक ही परिताप था कि, जिस के लिए मैं धर्म छोड़कर और सब कुछ छोड़ने को प्रस्तुत थी, उन का दर्शन न मिलता। क्या वह हमें भूल गए थे? ऐसा नहीं था। युवराज! आसमानी नाम की परिचारिका का आप को स्मरण है? हां, स्मरण हो सकती है। आसमानी के साथ हमारी विशेष प्रीति हो गई, उसे प्रभु का सम्बाद लेने को भेजा। उस ने उन्हें खोजकर हमारा सम्बाद उन्हें दे दिया। प्रत्युत्तर में उन्हों ने कितनी बातें कहलाईं, वह सब कहां तक कहें? मैंने आसमानी के हाथ उन को पत्र लिख भेजा, उन्हों ने भी प्रत्युत्तर भेजा। पुनः पुनः ऐसा ही होता रहा। इस प्रकार से अदर्शन होने पर भी कथोपकथन होने लगा।

इसी प्रणाली से तीन वर्ष कट गए। जब कि तीन वर्ष के बिछोह पर भी हमलोग एक दूसरे को न भूले, तब हम दोनों ने समझ लिया कि यह प्रणय शैवाल (सेवार) पुष्प की भांति केवल ऊपर ही भासमान नहीं है, कमल की भांति जड़ से बद्ध है। न जाने क्यों इस समय उन का धैर्य भी जाता रहा, एक दिन उन्हों ने विपरीत कार्य कर ही उठाया। रात को अकेली सोने के घर में सोई थी, अकस्मात् नींद टूटते ही स्तिमित दीपालोक में देखा कि सिरहाने एक मनुष्य है।

मधुर स्वर से हमारे कान में यह बात पड़ी—"प्राणेश्वरि ! डरो मत, मैं तुम्हारा ही दास हूं।"

मैं क्या उत्तर देती ? तीन बरस पर भेंट हुई। सब कुछ भूल गई, उन के गले लगकर रोने लगी। अब मरने के दिन आ गए, इसी से लज्जा जाती रही, सब बात प्रकाश किए देती हूं।

जब हमारे मुख से वाक्य निकला, हमने पूछा—"तुम यहां कैसे आए ?" उन्हों ने कहा—"आसमानी से पूछो, उसी के साथ पत-भरा बन कर पुरी में प्रवेश किया था। तभी से छिपे थे।"

मैं ने पूछा—"अब ?"

उन्हों ने कहा—"अब क्या ? तुम जो चाहो करो।"

मैं सोचने लगी—क्या करूं ? कहां रक्खूं ? जिधर चित्त जाता उधर ही शंका होती। योंही सोच ही रही थी कि शयनकक्ष का द्वार अकस्मात् खुल गया। सामने फिर कर देखा कि महाराज मानसिंह।

विस्तार करने की आवश्यकता क्या है ? वीरेंद्रसिंह कारागार में बंद हुए। महाराज ने अपनी इच्छा प्रकाश की—उन्हें राजदंड से दंडित करेंगे। हमारे जी पर कैसी बीतने लगी यह तो आप भी समझ सकते हैं। मैं रोती रोती उर्मिलादेवी के पैरों पर गिर पड़ी, आत्मदोष स्वीकार किया। सब दोष अपने कंधे पर ले लिया। पिता से भेंट होने पर उन के पैरों पर भी लोटने लगी। महाराज उन पर भक्ति रखते हैं, श्रद्धा करते हैं, गुरुवत् समझते हैं, अवश्य उन का अनुरोध रक्षा करेंगे। मैंने कहा—"अपनी बड़ी कन्या की ओर ध्यान दीजिए।" जान पड़ता है पिता ने महाराज के

साथ मिलकर युक्ति किया था, उन्हों ने हमारे रोने पर कान ही न दिया । रुष्ट होकर कहा—" पापीयसि ! तैंने एकबारगी लाज धो बहाई । "

उर्म्मिलादेवी ने हमारी प्राणरक्षा के लिए महाराज से बहुत कुछ कहा । उन्हों ने कहा—"हम चोर को तब छोड़ सकते हैं जब कि वह विमला के साथ विवाह करै । "

तब तो मैं महाराज की अभिसन्धि समझकर चुप हो गई । प्राणेश्वर ने महाराज की बात पर अत्यन्त रुष्ट होकर कहा—" मैं जावज्जीवन कारागार में रहूं यह अच्छा है, तथापि शूद्रीकन्या से कदापि विवाह न करूंगा । आप हिन्दू होकर कैसे ऐसा प्रस्ताव करते हैं ? "

महाराज ने कहा—"जब कि हम अपनी ही बहिन के शाहज़ादा सलीम के साथ विवाह चुके हैं, तो फिर तुम से ब्राह्मणकन्या के विवाहने का आग्रह करैं तो इस में क्या आश्चर्य है ? "

तथापि वे सम्मत न हुए । वरंच कहा—"महाराज ! जो होना था सो हो गया, आप हमें छोड़ दें अब हम कभी विमला का नाम भी न लेंगे । "

महाराज ने कहा—" ऐसा करने से जो अपराध तुम कर चुके उस का प्रायश्चित्त क्या हुआ ? तुम विमला को त्याग करोगे तो इसे कलंकिनी समझकर दूसरा कोई भी घृणा के कारण ग्रहण न करैगा । "

तथापि शीघ्र विवाह करने पर सम्मत न हुए । अन्त में जब कारागार की वेदना सह्य न हो सकी, तब अगत्या अर्ध सम्मत

होकर कहा—"यदि विमला हमारे यहां परिचारिका के वेश में रहै, हमारे जीते कभी विवाह की बात का उल्लेख न करै, हमारी धर्मपत्नी कहकर परिचय न दे, तो शूद्री से विवाह कर सकते हैं; नहीं तो नहीं।"

मैं ने अत्यंत पुलकित होकर यही स्वीकार किया। मैं धन, गौरव, परिचय आदि के लिए दुखी न थी, पिता और महाराज दोनों सम्मत हो गए। मैं दासी वेश में राजभवन से पतिभवन में आई।

अनिच्छा पूर्वक, परबल पीड़ा के कारण उन्हों ने मुझ से विवाह किया था, ऐसी अवस्था में विवाह करके कौन स्त्री का आदर करता है? विवाह के पश्चात् प्रभु हमें विष समान देखने लगे। पहिले का प्रणय उस समय बिलकुल ही जाता रहा। महाराज मानसिंह कृत अपमान स्मरण करके सदा तिरस्कार करते रहे। मुझे तो वह तिरस्कार भी आदर जान पड़ता। इसी भांति कुछ काल बीता; किन्तु इन सब परिचय के देने से अब क्या प्रयोजन? हमारा परिचय हो गया, अब और बातों की आवश्यकता नहीं। काल पाकर मैं फिर स्वामी की प्रीति पात्री हुई थी, परंतु अम्बरपति की ओर उन की पूर्ववत् विषदृष्टि बनी ही रही। भाग्य की बात है! नहीं तो यह सब क्यों होता?

हमारा परिचय समाप्त हुआ। केवल अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना ही हमारा उद्देश्य न था। बहुत लोग सोचते होंगे कि मैं कुलधर्म परित्याग करके गढ़ मान्दारन अधिपति के पास रहती थी;

हमारी मृत्यु के पीछे हमारे नाम से यह कालिख आप मिटा दीजिएगा, इसी आशा से आपको यह सब लिखा है।

इस पत्र में केवल आत्म विवरण ही लिखा। जिस के संवाद के लिए आप का चित्त चंचल है उस का नामोल्लेख भी नहीं किया। आप यही विचार लीजिए कि वह नाम पृथ्वी से लोप हो गया। तिलोत्तमा नाम कभी किसी का था, यह भूल जाइए—"

उसमान ने पत्र समाप्त करके कहा—"मा! आपने हमारी जिन्दगी बखशी थी हम इस का इवज़ देंगे।"

विमला ने दीर्घश्वास लेकर कहा—"अब पृथ्वी में हमारा कौन उपकार है? तुम हमारा क्या उपकार कर सकते हो? हां, एक उपकार है—"

उसमान ने कहा—"हम उसे बजा लावैंगे।"

विमला की आंख उज्ज्वल हो गई, बोली—"उसमान! क्या कहते हो? इस जले हुए जी पर क्यों और भी प्रवंचना करते हो?"

उसमान ने हाथ से एक अंगूठी उतार कर कहा—"यह अंगूठी लो; दो एक दिन के अन्दर तो कुछ हो नहीं सकता; कुतलू खां की साल गिरह आ पहुंची है, उस दिन बड़ी धूम होती है। पहरेदार खेल कूद में मतवाले हो जाते हैं। उसी दिन हम तुम्हें रिहा करेंगे। तुम "उस दिन रात के वक्त जनाना महल के दर्वाजे पर आना; जो शख्स तुम्हें ऐसी ही दूसरी अंगूठी दिखावै, तुम उस के साथ बेखटके बाहर चली जाना। उमेद तो है कि बेखटके रिहाई हो जायगी; आगे खुदा की मर्ज़ी।"

विमला ने कहा—"जगदीश्वर तुम्हें दीर्घजीवी करें, हम और क्या कहैं ?"

विमला का गला भर आया, और बोल न सकी।

विमला उसमान को आशीर्वाद देकर बिदा होती थी कि उसमान ने कहा—"एक बात के लिए ख़बर्दार किए देते हैं। तनहा आइएगा। आप के साथ में अगर कोई और होगा तो काम न होगा; बल्कि और बिगड़ने का खौफ़ है।"

विमला समझ गई कि उसमान तिलोत्तमा को सङ्ग लाने के लिये निषेध करता है। मनमें सोचा—"अच्छा, दोनों न जा सकैंगी तो क्या हुआ ? तिलोत्तमा अकेली जायगी।"

विमला बिदा हुई।

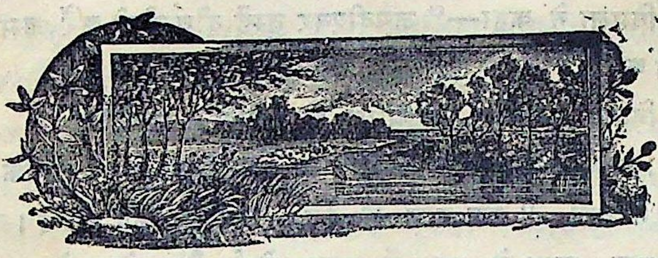

अष्टम परिच्छेद।

आरोग्य।

दिन चला जाता है। तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो, दिन चला जायगा, रहैगा नहीं। जिस अवस्था में चाहो रहो, दिन चला जायगा, रहैगा नहीं। पथिक! भारी आंधी पानी के बीच में पड़े हो? सिर पर घोर मेघगर्जन हो रहा है? झटका लग रहा है? वर्षा से भींग रहे हो? नंगे शरीर पर पत्थर गिर रहे हैं? आश्रय नहीं मिलता? थोड़ी देर धीरज धरो, यह दिन चला जायगा, रहैगा नहीं। थोड़ी देर अपेक्षा करो, दुर्दिन दूर होगा, सुदिन आवेगा, सूर्य नारायण उदय होंगे, कल तक अपेक्षा करो।

किसका दिन नहीं कटता? किसका दुःखस्थायी करने के लिए दिन बैठा रहता है? तो फिर क्यों रोते हो?

किसका दिन नहीं बीता? तिलोत्तमा धूल में पड़ी है, तो भी उसका दिन चला जाता है।

विमला के हृदय कमल में प्रतिहिंसा कालसर्पिणी के वास से सब शरीर विष से जर्जर हो रहा है, एक मुहूर्त भी उस का दंशन असह्य है, भला एक दिन में कितने मुहूर्त हैं! तथापि क्या दिन न बीता?

कुतलू खां मसनद नशीन हैं, शत्रु जयी हैं, सुख से दिन कट रहा है। दिन चला ही जाता है, रहता नहीं।

जगतसिंह रुग्ण शय्या पर हैं; रोगी का दिन कैसा पहाड़ सा होता है, कौन नहीं जानता? तथापि दिन कट ही गया!

दिन गया। दिन पर दिन जगतसिंह आरोग्य लाभ करने लगे। यम के दण्ड से निष्कृति पाकर राजपुत्र दिन पर दिन निरापद होने लगे। पहिले शरीर की ग्लानि दूर हुई, फिर आहार, फिर बल, अन्त में चिन्ता।

पहिली चिन्ता,—तिलोत्तमा कहां है? राजपुत्र ज्यों ज्यों आरोग्य होने लगे, त्यों त्यों अत्यन्त व्याकुलता के साथ सब से पूछने लगे, परन्तु संतोष देनेवाला उत्तर किसी से न मिला। आयषा जानती नहीं, उसमान कुछ कहते नहीं, दास, दासी कोई जानते ही नहीं; न जाने किस अभिप्राय से कोई न बतलाता। राजपुत्र कण्टक शय्याशायी की भांति चञ्चल होने लगे।

दूसरी चिन्ता—अपना भविष्यत्। "क्या होगा? एकाएक इस प्रश्न का उत्तर कौन दे सकता है? राजपुत्र ने देखा कि वह बन्दी हैं। दयालु चित्त उसमान और आयषा की कृपा से कारागार के बदले सुसज्जित, सुवासित, शयनगृह में निवास करते हैं; दास, दासी सेवा कर रही हैं; जिस समय जिसका प्रयोजन होता वह

कहने के पूर्व ही मिल जाता है; आयषा सहोदरा से भी अधिक स्नेह के साथ उनका यत्न करती है। तथापि द्वार पर पहरी है; स्वर्ण पिञ्जरवासी, सुरस पानी से परितृप्त विहंगम की भांति बन्द हैं। कब छुट्टी होगी? छुट्टी पाने की क्या सम्भावना है? उनकी सब सेना कहां गई? सेनापति बिना उनकी क्या दशा हुई?

तीसरी चिन्ता—आयषा। यह चमत्कारिणी, परहित मूर्तिमती, कैसे इस मृण्मय पृथ्वी पर अवतरी?

जगत सिंह ने देखा—आयषा को विश्राम नहीं है, न थकावट जान पड़ती है और न अवहेला है, रात दिन रोगी की शुश्रूषा करती है। जब तक राजपुत्र आरोग्य नहीं हुए तब तक प्रत्यह सवेरे देखने आती, प्रभात सूर्य रूपिणी हाथ में कुसुम कली लिये लावण्य मय पद विक्षेप करती चुपचाप आगमन करती प्रतिदिन देखते, जब तक स्नानादि का समय बीत नहीं जाता तब तक आयषा वहां से न हटती। प्रतिदिन देखते, थोड़ी ही देर पीछे फिर आकर केवल किसी नितान्त प्रयोजन से ही उठती, जब तक उन की मा बेगम साहब दासी भेज कर न बुलातीं तब तक उन की सेवा से नहीं रुकती।

रुग्ण शय्या पर किस ने शयन नहीं किया है? यदि किसी की रुग्ण शय्या के सिरहाने बैठ कर किसी मनमोहिनी रमणी ने पंखा हांका होगा, उसी ने जाना होगा कि रोग में भी सुख होता है।

पाठक! तुम जगतसिंह की अवस्था का अनुभव करना चाहते हो? तो मन ही मन में उस शय्या पर शयन करो, शरीर में व्याधि यंत्रणा का अनुभव करो, स्मरण करो कि शत्रुओं के बीच में बंदी

हो गए हैं, फिर उस सुवासित सुसज्जित, सुस्निग्ध शयन गृह का ध्यान करो। शय्या पर सोए २ तुम द्वार की ओर देख रहे हो, अकस्मात् तुम्हारा मुख प्रफुल्ल हो गया, इस शत्रुपुरोमें जो तुम्हारा सहोदर के समान यत्न करता है वही आ रहा है। तिस पर वह रमणी है, तिसपर भो युवति, खिला हुआ पद्म वैसे ही पड़े पड़े देख रहे हो; देखो कैसी मूर्ति है! कुछ कुछ दीर्घ शरीर; तदुपयुक्त गठन, महामहिम देवी प्रतिमा स्वरूप! प्रकृति नियमित रानी का स्वरूप! देखो, पाद विक्षेप कैसा ललित है? गजेन्द्रगमन सुना है? मरालगमन देखोगे? इस पाद विक्षेप को देखो, सुर की लय बाजे में होती है; इस पाद विक्षेप की लय तुम्हारे हृदय में होती है। हाथ की कुसुम कली को देखो! देखा, हाथ की प्रभा से कुसुम मलिन हो गया है? देखा, कंठ की प्रभा से स्वर्णहार दीप्ति हीन हो रहा है? देखा, तुम्हारी पलक क्यों नहीं झपकती? देखा, कैसी सुन्दर ग्रीवा भंगी है? देखते हो, प्रस्तर धवल ग्रीवा के ऊपर कैसे श्याम कुंचित केश गुच्छ पड़े हैं? देखते हो, उसके पास ही कर्ण-भूषण कैसा हिल रहा है? मस्तक की कुछ २ बंकिम भंगी देखा? यह केवल ईषत् दीर्घता के कारण है। ऐसा एक मन से क्यों देख रहे हो? आयषा मन में क्या कहैगी?

जब तक जगत सिंह के रोग की शुश्रूषा की आवश्यकता थी, तब तक आयषा प्रत्यह अनवरत उसी में लगी रही। क्रमशः ज्यों ज्यों रोग की शांति होने लगी, त्यों त्यों आयषा के आवागमन में भी कमी होने लगी। जब राजकुमार सम्पूर्ण आरोग्य हो गए, तब आयषा का जगतसिंह के पास आना प्रायः बंद ही हो गया

कदाचित् दो एक बेर आ जाती। जैसे शीतार्त व्यक्ति के अंग से क्रमशः बेला अधिक होने से रौद्र हटता जाता है, वैसे ही आयषा भी क्रमशः जगतसिंह से आरोग्य होने पर हटने लगी।

एक दिन घर के भीतर अपरान्ह काल में जगतसिंह खड़े होकर गवाक्ष से दुर्ग के बाहर देख रहे हैं, कितने मनुष्य बेखटक अपने अपने ईप्सित या प्रयोजनीय स्थान को जा आ रहे हैं; राजपुत्र दुःखित होकर उन सभों की अवस्था से अपनी अवस्था का मिलान कर रहे थे। एक स्थान पर कई एक मनुष्य मंडली बांध कर किसी व्यक्ति वा वस्तु को घेरे खड़े हैं। राज पुत्र की दृष्टि उस पर पड़ी। समझ गये कि सब लोग कोई तमाशा देख रहे हैं, मन लगाकर कुछ सुन रहे हैं, बीच में कौन मनुष्य है या कौन वस्तु है राजकुमार को दिखाई नहीं पड़ती थी। कौतूहल होने लगा। कुछ देर पीछे कई एक श्रोताओं के चले जाने पर राजपुत्र का कौतूहल निवारण हुआ। देखा कि एक मनुष्य मंडली के बीच में पोथी के ऐसे दो चार पन्ने लिए उसमें से कुछ पढ़ कर सुना रहा है, पढ़नेवाले का आकार देख कर राजपुत्र के जी में कुछ कौतुक उपजा। उसे मनुष्य भी कह सकते हैं, वज्राघात से पत्र भ्रष्ट मध्यमाकार ताड़ का वृक्ष भी कह सकते हैं, लंबान में भी प्रायः वैसाही और चौड़ान में भी वैसा ही, परन्तु ताड़ के पेड़ को कभी ऐसी भारी नाक का बोझ नहीं उठाना पड़ता। आकार और इंगित दोनों में समान थे, पोथी पढ़ते पढ़ते पाठक जैसे हाथ नचाता, सिर नचाता, नाक फुलाता था, राजकुमार अवाक् हो कर उसे देख रहे थे। इतने में वहां उसमान आ उपस्थित हुए।

परस्पर अभिवादन के उपरान्त उसमान ने कहा—"आप एक-टक खिड़की में खड़े क्या देख रहे थे?"

जगतसिंह ने कहा—"देखने से एक सीधा काठ आप भी देख सकेंगे।"

उसमान ने कहा—"इसे क्या आप ने कभी देखा नहीं है?"

राजपुत्र ने कहा—"नहीं।"

उसमान ने कहा—"यह आप लोगों का ब्राह्मण है, गुफ्तगू इसकी बड़ी मज़ेदार है। इसे गढ़ मान्दारन में देखा था।

राजकुमार चिन्ताग्रस्त हो गए। गढ़ मान्दारन में था? तो क्या यह तिलोत्तमा का कोई समाचार न बतला सकेगा? इसी चिन्ता में व्याकुल हो कर कहा—"महाशय, उसका नाम क्या है?"

उसमान ने सोच कर कहा—"उसका नाम कुछ मुश्किल सा है—एक बारगी याद नहीं आता। गनपत? नहीं—गनपत—गज पत—नहीं; गज-पत किसे कहते हैं?"

"गजपत? गजपत इस देश का नाम नहीं है, और देखने में यह बंगाली जान पड़ता है।"

"बंगाली भट्टाचारज ही तो है। उसका एक खिताब भी है—इल्म—इल्म?"

"महाशय बंगाली की उपाधि में इल्म शब्द नहीं व्यवहार किया जाता। इल्म को बंगला में विद्या कहते हैं। विद्याभूषण या विद्यावागीश होगा।"

"हां हां! विद्या और क्या—रहिए तो—बंगला में हाथी को क्या कहते हैं?"

"हस्ती"

"और?"

"करी, दंती, वारन, नाग, गज—"

"हां, हां, याद आ गया, उसका नाम "गजपति विद्यादिग्गज" है।"

"विद्यादिग्गज? विलक्षण उपाधि है। जैसा नाम है वैसी ही उपाधि है। उस से बात करने को बड़ा जी चाहता है।"

उसमान खां कुछ कुछ गजपति की बात चीत सुन चुके थे। विवेचना किया—इस के साथ बात चीत होने में किसी प्रकार की हानि नहीं है। कहा—"क्या हर्ज है?"

दोनों ने बाहर के कमरे में आकर नौकर भेजकर गजपति को बुलवाया।

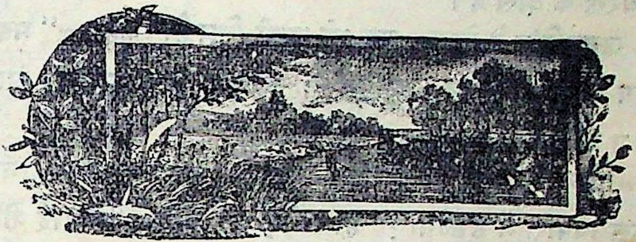

नवम परिच्छेद ।

दिग्गज सम्वाद ।

नौकर के साथ विद्यादिग्गज के कक्ष में प्रवेश करने पर राज-कुमार ने पूछा—" आप ब्राह्मण हैं ?"

दिग्गज ने हाथ नचाकर कहा—

" यावत् मेरौ स्थिता देवा यावत् गङ्गा महीतले।
असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमंदिरम् ॥"

जगतसिंह ने हंसी रोक कर प्रणाम किया; ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया—"खोदा खां बाबू साहब को खुस रक्खें।"

राजपुत्र ने कहा—" महाशय, मैं मुसलमान नहीं हूं; हिन्दू हूं।"

दिग्गज ने मन में कहा—" यह बबाजी हमें धोखा देते हैं, कोई न कोई मतलब है; नहीं तो हमें क्यों बुलाता ?" प्रकाश में उदासीनभाव से कहा—" खां बाबू जी, हम आप को पहिचानते

हैं; आप के अन्न से पले हैं; हम से कुछ न कहिए, हम तो आप के श्रीचरण के दास हैं।

जगतसिंह ने देखा—यह भी भारी विघ्न है, कहा—"महाशय, आप ब्राह्मण हैं, हम राजपूत हैं; आप ऐसे न कहिए। आप का नाम गजपति विद्यादिग्गज है।

दिग्गज ने सोचा—"अरे बाप रे! यह तो नाम जानता है, किस विपत्ति में डालैगा?" हाथजोड़ कर कहा—"दोहाई शेख जी की! मैं बड़ा गरीब हूं, आप के पैर पड़ता हूं।"

जगतसिंह ने देखा कि ब्राह्मण जैसा डर गया है उस से स्पष्टतः कोई काम इस से न होगा, इस लिए बात पलटने के लिए कहा—"आप के हाथ में यह कौन पोथी है?"

"जी, यह मानिक पीर की पोथी है।"

"ब्राह्मण के हाथ में मानिक पीर की पोथी?"

"जी—जी—मैं ब्राह्मण था पर अब तो ब्राह्मण नहीं हूं।"

राजकुमार विस्मयापन्न हुए; विरक्त होकर कहा—"यह क्या? आप गढ़ मान्दारन में न रहते थे?

दिग्गज ने सोचा—"यह तो सर्वनाश हुआ! हम वीरेन्द्रसिंह के दुर्ग में रहते थे, इस को पता लग गया। वीरेन्द्रसिंह की जो दशा किया है वही हमारी भी करैगा।" ब्राह्मण मारे डर के रो दिया। राजकुमार ने कहा—"यह क्या जी?"

दिग्गज हाथ जोड़ते २ कहने लगा—"दोहाई खां बाबा की! हमें मत मारो बाबा! हम तुम्हारे गुलाम हैं बाबा! तुम्हारे गुलाम बाबा!!"

"तुम क्या पागल हो गए हो ?"

"नहीं बाबा ! हम तुम्हारे ही दास हैं बाबा ! हम तुम्हारे ही हैं बाबा !"

जगतसिंह ने अगत्या ब्राह्मण को स्थिर करने के लिए कहा—"तुम्हें कौन चिन्ता है ? तुम ज़रा मानिक पीर की पोथी तो पढ़ो, हम सुनेंगे।"

ब्राह्मण मानिक पीर की पोथी लेकर सुर से पढ़ने लगा। जैसे यात्रा के लड़के अधिकारी की कनेठी खाने पर गीत गाते हैं, दिग्गज पंडित की भी वही दशा हुई।

थोड़ी देर पीछे राजकुमार ने फिर पूछा—"आप ब्राह्मण होकर मानिक पीर की पोथी क्यों पढ़ते हैं ?"

ब्राह्मण ने गाना बंद करके कहा—"हम मुसलमान हो गए हैं।"

राजपुत्र ने कहा—"यह क्या ?" गजपति ने कहा—"जब मुसलमान बाबू लोग गढ़ में गए, तब हम से कहा, ओ बामन ! आ, तेरी जात लें, यह कह कर उन लोगों ने हम को पकड़ कर मुरगी का पोलाव खिला दिया।

"पोलाव क्या ?"

दिग्गज ने कहा—"पकाया हुआ चावल और घी का पाक।"

राजपुत्र समझ गए कि कौन पदार्थ था, कहा—"हां, कहे जाव।"

दिग्गज ने कहा—"फिर हम को कलमो पढ़ाया।"

"कलमा पढ़ाया ?"

"फिर कहा कि तू मुसलमान हो गया, तभी से हम मुसलमान हैं।"

इसी अवसर पर राजपुत्र ने पूछा—"और सब लोगों का क्या हुआ?"

"और बहुत से बामन मुसलमान हो गए।"

राजकुमार ने उसमान की ओर देखा। उसमान ने राजपुत्र कृत अवाक् तिरस्कार समझ कर कहा—"कुंअर साहब! इस में हर्ज ही क्या है? मुसलमानों की समझ में मोहम्मदी मज़हब ही सच्चा मज़हब है, बल से हो, छल से हो, उसका फैलाना हमलोगों के मज़हब में सवाब है, अज़ाब नहीं है।"

राजपुत्र उत्तर न देकर, विद्यादिग्गज से पूछने लगे—"विद्यादिग्गज महाशय!"

"जी, अब शेखदिग्गज हूं।"

"अच्छा यही सही, शेख़ जी! गढ़ के और किसी का सम्बाद भी आप कुछ जानते हैं?"

उसमान राजपुत्र का अभिप्राय जानकर उद्विग्न हुआ। दिग्गज ने कहा—"और अभिराम स्वामी भाग गए।"

राजपुत्र ने समझा—इस मूर्ख से बिना स्पष्ट स्पष्ट कहे कुछ न सुनैगा। कहा—"वीरेन्द्रसिंह का क्या हुआ?"

ब्राह्मण ने कहा—"नवाब कुतलूख़ां ने उन्हें मरवा डाला।"

राजपुत्र का मुख लाल हो गया। उसमान से पूछा—"यह क्या? क्या यह ब्राह्मण झूठ कहता है?"

उसमान ने गंभीर भाव से कहा—"नवाब साहब ने इन्साफ़ान सलतनत का बाग़ी समझ कर क़तलकरा दिया।"

राजपुत्र की आंख में अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

उसमान से पूछा—"हम एक निवेदन और कर सकते हैं? यह काम आप की सम्मति से हुआ है?"

उसमान ने कहा—"हमारी राय के खिलाफ़।"

राजकुमार बहुत देर तक चुप रहे। उसमान ने सुसमय पाकर दिग्गज से कहा—"अब तुम जा सकते हो।"

दिग्गज उठकर जाना ही चाहता था कि राजकुमार ने हाथ पकड़ कर पूछा—"एक बात और पूछना है, विमला कहां है?"

ब्राह्मण ने दीर्घ श्वास लिया, रो भी दिया; कहा—"विमला इस समय नवाब की उपपत्नी है।"

राजपुत्र ने विद्युद्दृष्टि से उसमान की ओर देख कर पूछा—"क्या यह भी सच है?"

उसमान ने कुछ उत्तर न देकर ब्राह्मण से कहा—"अब तुम यहां क्या करते हो? बाहर जाओ।"

राजपुत्र ने ब्राह्मण का हाथ दृढ़तर पकड़ लिया। जाने की शक्ति न रही, कहा—"एक मुहूर्त और ठहरो, एक बात मात्र पूछना है।" उन के आरक्त लोचन से द्विगुणतर अग्नि स्फुलिंग निकलने लगे, कहा—"एक बात और है—तिलोत्तमा?"

ब्राह्मण ने कहा—"तिलोत्तमा भी नवाब की उपपत्नी हो गई। दास दासी लेकर वह लोग सुख से हैं।"

राजकुमार ने वेग से ब्राह्मण का हाथ झटकार दिया। ब्राह्मण गिरते गिरते बच गया।

उसमान ने लज्जित होकर मृदुभाव से कहा—"हम तो सिर्फ एक सिपह सालार हैं।"

राजपुत्र ने उत्तर दिया—

"आप पिशाच के सेनापति हैं।"

दशम परिच्छेद।

प्रतिमा विसर्जन।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस रात में जगत सिंह को नींद न आई। शय्या पर अग्नि बिछी हुई, हृदय में अग्नि जलती हुई जान पड़ी। जिस तिलोत्तमा के मरने से जगत सिंह को पृथ्वी शून्य ज्ञान पड़ती अब वही तिलोत्तमा मरी क्यों नहीं, यही परिताप का विषय हुआ।

यह क्या? तिलोत्तमा क्यों नहीं मरी? कुसुम सुकुमार देह, माधुर्य पद, कोमलालोक से वेष्टित। जिस देह को जिधर जगत सिंह आंख फेरते, उधर ही मानसिक दर्शन पाते; वही देह श्मशान की मृत्तिका होगी? इस पृथ्वी—असीम पृथ्वी पर उस देह का चिन्ह भी न रहैगा? जब यह चिन्ता उदय होती, राजकुमार की आंख से अश्रु धारा प्रवाहित होती। उसी समय दुष्ट कुतलू खां के विहार मंदिर की स्मृति हृदय में बिजली सी चमक उठती; वह कुसुम सुकुमार शरीर पापिष्ठ पठान के अंकस्थित दिखाई पड़ता, फिर दारुण अग्नि में हृदय जलने लगता।

तिलोत्तमा उन के हृदय मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी मूर्ति थी।

वही तिलोत्तमा पठान भवन में है!

वही तिलोत्तमा कुतलू खां की उपपत्नी है?

क्या अब भी वह मूर्ति राजपूत की आराध्य हो सकती है?

उस प्रतिमा को अपने हाथ से स्थानच्युत करने में संकोच न करना क्या राजपूत का कुलोचित धर्म है?

जो प्रतिमा जगत सिंह के हृदय में बद्धमूल हो गई थी, उसे उखाड़ने में हृदय भी विदीर्ण हो जायगा। कैसे उस मोहनीमूर्ति को सदा के लिये भुला दें? यह भी कहीं हुआ है? जितने दिन तक मेधा रहेगी, उतने दिन तक अस्थि, मज्जा, शोणित निर्मित देह रहेगी, उतने दिन तक वह हृदयेश्वरी होकर विराजमान रहेगी।

इन सब उत्कट चिन्ताओं में राजपुत्र के मन की स्थिरता तो दूर रही, बुद्धि में भी अपभ्रंश होने लगा, स्मृति में भी विश्रृंखलता होने लगी, रात्रि शेष हुई तौ भी दोनों हाथ पर सिर रक्खे बैठे हैं, मस्तिष्क घूम रहा है, अब कुछ भी आलोचना करने की शक्ति न रही।

बहुत देर तक एक भाव से बैठे बैठे जगत सिंह के शरीर में वेदना होने लगी। मानसिक यंत्रणा के बोझ से शरीर में ज्वर की भांति संताप होने लगा, जगतसिंह खिरकी के पास जाकर खड़े हो गए।

शीतल मंद वायु जगत सिंह के सिर में लगी। रात अंधेरी, आकाश घोर मेघावृत, नक्षत्रावली नहीं दिखाई पड़ती, कभी कभी चलते हुए मेघ खंड के आवरणाभ्यंतर से कोई क्षीण तारा दिखाई पड़ जाता है; दूरस्थ वृक्ष श्रेणी अंधेरे में आपस में मिलकर आकाश के नीचे अंधकारमय दीवार की भांति जान पड़ती है, पास के वृक्षों

पर खद्योत माला हीरक चूर्णवत् प्रज्वलित है। सामने एक तड़ाग में आकाश वृक्षादि का प्रतिविम्ब अंधकार में अस्पष्ट रूप से स्थित है।

रात्रि की मेघ स्पृष्ट शीतल वायु के लगने से जगत सिंह का कुछ कुछ दैहिक संताप दूरहुआ। खिरकी पर हाथ रखकर उसपर सिरस्थापन करके खड़े हुए। वहुत देर तक तंद्रा में उत्कट मानसिक यंत्रणाके सहनकरनेसे अवसन्न हो रहे थे, इस समय शीतल वायु के लगने से कुछ चिन्ताविरत हुए, कुछ शान्त हुए। इतनी देर तक जिस तीक्ष्ण छुरी संचालन से हृदय विद्ध होरहा था, इस समय वह दूर होकर पूर्वापेक्षा तीक्ष्णता शून्य नैराश्य मन में प्रवेश करने लगा। आशा त्याग करना ही भारी क्लेश का काम है, एक बेर मन में नैराश्य स्थिर हो जाने पर फिर उतना क्लेशकर नहीं होता। अस्त्राघात ही अत्यन्त क्लेशकर होता है, उसके पीछे जो क्षत होता है उसकी यंत्रणा स्थायी तो होती है परंतु उतनी उत्कट नहीं होती। जगत सिंह निराशा की मृदुतर यंत्रणा भोग रहे थे। अंधकार नक्षत्रहीन आकाश की ओर देख कर इस समय अपना हृदयाकाश भी तद्रूप अंधकार नक्षत्रहीन हो गया सजल नेत्र हो यही सोच रहे थे। भूतपूर्व सब धीरे धीरे स्मरण आने लगे; बाल्यकाल, कैशोर प्रमोद, सभी मन में आने लगे; जगत सिंह का चित्त उसमें मग्न हुआ, क्रमशः और भी अन्यमनस्क होने लगे, क्रमशः शरीर और भी शीतल होने लगा, थकावट से चेतनापहरण होने लगा। खिरकी थांभे ही थांभे जगत सिंह को तन्द्रा आ गई। निद्रितावस्था में राजकुमार ने स्वप्न देखा, गुरुतर यंत्रणाजनक स्वप्न देखने लगे; निद्रित मुख पर भ्रुकुटी चढ़ने लगी; मुखभंगी उत्कट क्लेशजनक होने लगी; हाथ में दृढ़ मुट्ठी बंध गई।

चमक कर निद्रा खुल गई, घबड़ा कर कुमार टहलने लगे। कितनी देर तक यह यंत्रणा भोगते रहे यह निश्चय करना कठिन है। जिस समय प्रातः सूर्य किरण से छत दीप्त हो रही थी उस समय जगत सिंह पृथ्वी पर बिना शय्या, बिना तकिया बिछौने के पैर फैलाए सो रहे थे।

उसमान ने आकर उन्हें उठाया। राजपुत्रकी नींद खुलने पर उसमान ने अभिवादन कर के उन के हाथ में एक पत्र दिया। पत्र हाथ में लेकर राजपुत्र चुपचाप उसमान के मुख की ओर देखते रहे। उसमान ने समझा—राजपुत्र आत्म विह्वल हो रहे हैं, इस से इस समय प्रयोजनीय वार्तालाप नहीं हो सकता; यह समझकर कहा—"कुंअर बहादुर! आप के ज़मीन पर सोने की वजह पूछने का इख़्तियार मुझे नहीं है। मैंने इस ख़त के देने वाली से वादा किया था कि यह ख़त आप को दे दूंगा। जिस वजह से इतने रोज़ तक यह ख़त आप को नहीं दिया था, वह वजह अब दूर हो गई; आप सब बातों से वाक़िफ़ हो गए। इस लिये ख़त आप को देकर हम रुखसत होते हैं, मौक़ा मिलने से आप पढ़िएगा, मैं सेह पहर को हाज़िर होऊंगा। जवाब दीजिएगा तो उसे उन के पास पहुंचा दूंगा।"

यह कह कर उसमान राजपुत्र के पास पत्र रख कर चले गए।

राजपुत्र अकेले बैठ कर, पूरी संज्ञा लाभ होने पर विमला का पत्र पढ़ने लगे। आद्योपान्त पढ़ कर आग में जला दिया। जब तक पत्र जलता रहा उतनी देर तक उसकी ओर देखते रहे; जब

पत्र निःशेष हो गया तब आपही आप कहने लगे—"स्मृति चिन्ह तो आग में डाल कर निःशेष कर डाला, स्मृति भी तो संतापाग्नि में जल रही है, फिर निःशेष क्यों नहीं होती ?

जगत सिंह ने नियमानुसार प्रातः कृत्य समाप्त किया, सन्ध्या पूजा समाप्त करके भक्ति पूर्वक इष्टदेव को प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़ ऊपर को ओर दृष्टि करके कहने लगे—"गुरुदेव! दास को न छोड़िएगा? हम राजधर्म प्रतिपालन करेंगे, क्षत्रिय कुलोचित कार्य करेंगे, इस चरण कमल का प्रसाद भिक्षा चाहते हैं। विधर्मी की उपपत्नी को इस चित्त से दूर करेंगे, इसमें यदि शरीर भी छूटेगा तो अंत में तुम्हें पावेंगे। मनुष्य का साध्य जो है वह करते हैं, मनुष्य का जो कर्तव्य है वह करेंगे। देखो, गुरुदेव! तुम अंतर्यामी हो, अंतस्थल तक दृष्टि कर के देखो, अब हम तिलोत्तमा से प्रेम करना नहीं चाहते, अब हम उसके दर्शनाभिलाषी नहीं हैं, केवल कालरूप भूतपूर्व स्मृति रात दिन हृदय दग्ध कर रही है। आकांक्षा को विसर्जन कर दिया तौ भी क्या स्मृति लोप न होगी? गुरुदेव! इस चरण का प्रसाद भिक्षा चाहते हैं; नहीं तो स्मरण की यंत्रणा अब सह्य नहीं होती।"

प्रतिमा विसर्जन हुई।

तिलोत्तमा इस समय धूलिशय्या पर क्या स्वप्न देख रही थी? इस घोर अंधकार में, जिस एक नक्षत्र की ओर देख रही थी, अब वह भी किरण वितरण न करेगा। इस घोर तूफान में जिस लता से प्राण बांध रखा था वह भी छिन्न हो गई; जिस बेड़े पर छाती रखकर समुद्रपार होती थी, वह भी डूब गया।

एकादश परिच्छेद।

गृहांतर।

अपरान्ह समय कथनानुसार उसमान ने राजपुत्र के पास आकर कहा—"जनाब! जवाब भेजने की ज़रूरत है?"

युवराज ने उत्तर लिख रक्खा था, पत्र हाथ में लेकर उसमान को दिया। उसमान ने पत्र हाथ में लेकर कहा—"आप नाखुश न होइएगा, हमलोगों का यह दस्तूर है कि किले में रहनेवाला कोई शख़्स अगर किसी को ख़त भेजता है तो हमलोग बग़ैर पढ़े नहीं भेजते।"

युवराज ने किंचित् विषण्णभाव से कहा—"इस के कहने की आवश्यकता नहीं है, आप खोलकर पढ़ लें, यदि जी चाहे भेज दें।"

उसमान ने पत्र खोल कर पढ़ा। उस में बस यही लिखा था।

"मन्दभागिनी! हम तुम्हारा अनुरोध न भूलेंगे; किन्तु तुम यदि पतिव्रता हो, तो शीघ्र ही पतिपथावलंबन करके अपना कलंक दूर करो।

जगतसिंह।"

उसमान ने पत्र पढ़कर कहा—"कुंअर बहादुर! आप का दिल निहायत सख़्त है।"

राजपुत्र ने नीरसभाव से उत्तर दिया—"पठानों की अपेक्षा कम ही।"

उसमान का मुख कुछ आरक्त हो आया। कुछ कर्कशभंगी करके बोले—"यक़ीन है, पठानों ने आप के साथ हरएक बातों में तो नालायक़ी न की होगी।"

राजपुत्रकुपित भी हुए, लज्जित भी हुए, कहा—"जी नहीं, हम अपनी निज की बात नहीं कहते। आप ने हमारे प्रति सभी प्रकार से दया प्रकाश की है, और बन्दी करने पर भी प्राणदान किया है; सेनाहंता शत्रु की सांघातिक पीड़ा को शमन कराया है—जिसे कारागार में रखना चाहिए उसे प्रमोदमय घर में रक्खे हैं। इस से अधिक और क्या करते? परन्तु हम यह कहते हैं कि—आपने भद्रता के जाल में क्यों फंसा रक्खा है; इस सुख का परिणाम कुछ समझ में नहीं आता। यदि हम बन्दी हों तो कारागार में स्थान दीजिए; इस दया की बेड़ी से मुक्त कीजिए। और यदि बन्दी नहीं हैं तो इस सोने के पिंजड़े में बंद रखने से क्या प्रयोजन?"

उसमान ने स्थिरभाव से उत्तर दिया—"कुँअर साहब! बदसाइत के लिए घबड़ाते क्यों हैं? बदवख़्ती को बुलाना नहीं पड़ता, वह तो आप ही आती है।"

राजपुत्र ने गर्वित स्वर से कहा—"आप की इस कुसुमशय्या के आगे राजपूत लोग कारागार की शिलाशय्या को अमंगल नहीं समझते।"

उसमान ने कहा—"पत्थर पर सोना हो अगर बदबख़्ती की हद होती तो कौन मुज़ायक़ा था ?"

राजपुत्र उसमान की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर बोले—"यदि कुतलूख़ां को समुचित दंड ही न दे सके, तो फिर मरने ही में कौन क्षति है ?"

उसमान ने कहा—"कुंअर साहब ! ख़बरदार ! पठानों की जो बात है, वही काम भी है।"

राजपुत्र ने हंसकर कहा—"सेनापति ! आप यदि हमें भय दिखाने आए हों तो यह यत्न विफल समझिए।"

उसमान ने कहा—"कुंअर साहब ! हम लोगों में अब इस कदर बेतकल्लुफ़ी है कि फुजूल बातों के बढ़ाने का कोई नतीजा नहीं। हम इस वक़्त आप के पास किसी ख़ास काम की गरज़ से आए हैं।"

जगतसिंह ने कुछ विस्मित होकर कहा—"आज्ञा कीजिए।"

उसमान ने कहा—"मैं इस वक़्त जो गुफ़्तगू पेश करता हूं उसे आप कुतलूख़ां के जानिब से ख़याल फ़र्माइएगा।"

जगत—बहुत अच्छा।

उसमान—सुनिए—राजपूत और पठानों के जंग में दोनों क़ौम का नुक़सान होता है।

राजपुत्र ने कहा—"पठानकुल क्षय करना ही तो युद्ध का उद्देश्य है।"

उसमान ने कहा—"बजा है मगर दोनों क़ौम की बर्बादी के इवज़ एक ही क़ौम की बर्बादी कहां तक मुमकिन है यह तो आप

देखते ही हैं। क़िलः मान्दारन को फ़तह करनेवाले निरेबोदे नहीं हैं, यह आपने देख ही लिया।"

जगतसिंह ने कुछ मुस्किरा के कहा—"हां, वह लोग कौशलमय तो हैं।"

उसमान कहने लगे—"जो हो, अपनी तारीफ़ करने का हमारा मतलब नहीं है। मुग़ल बादशाह के साथ हमेशः झगड़ा रखकर पठान लोग उत्कल में चैन से नहीं रह सकते। मगर मुग़ल बादशाह भी पठानों को हर्गिज़ अपने ज़ेर न कर सकैंगे। हमारी बात को अपनी तारीफ़ न समझिएगा। आप तो इल्म सल्तनत जानतेही हैं, गैार कीजिए, दिहली से उत्कल कितनी दूर है। फ़र्ज़ कर लीजिए—शाहे दिहली ने इस मर्तबः मानसिंह के ज़ोर से पठानों पर फ़तह पाई मगर उनका निशान फ़तह कितने दिन तक इस मुल्क में उड़ता रहैगा। महाराज मानसिंह फ़ौज लेकर पीछे मुड़े और उत्कल से शाहे दिहली की हुकूमत दूर हुई। पेश्तर भी तो अकबर उत्कल फ़तह कर चुके हैं, मगर कितने रोज़ तक यहां की मालगुज़ारी वसूल किया? इस मर्तबः भी फ़तहयाब होने पर यही होगा। मान लीजिए फिर फ़ौज भेजी, फिर फ़तह पाई, मगर फिर पठान खुदसर हो जायंगे। पठान लोग बंगाली नहीं हैं, कभी हुकूमत बर्दाश्त नहीं किया है; एक आदमी भी ज़िन्दः रहैगा तो बर्दाश्त न करैगा; यह पुख़्तः बात कहता हूं। तो फिर नाहक राजपूत और पठानों के खून से ज़मीन सुर्ख़ करने का क्या नतीजा?"

जगतसिंह ने कहा—"आप क्या करने कहते हैं?"

उसमान ने कहा—"मैं कुछ नहीं कहता। मेरे मालिक सुलह करने कहते हैं।"

जगत—कैसी सन्धि ?

उसमान—"दोनों तरफ़वाले कुछ२ नुकसान गवारः करैं। नवाब कुतलू खां ने बज़ोर शमशीर बंगाल के जिन हिस्सों को फ़तह किया है उन्हें छोड़ने को तैयार हैं। अकबर शाह भी उड़ीसा का हक़ छोड़कर फ़ौज लौटा लें, और आइन्दः हमलः करने से बाज़ रहैं। इस में बादशाह का कोई नुक़सान नहीं है, वरंच पठानों ही का नुक़सान है। हमलोगों ने जो मुश्किल से दखल किया है, उसे छोड़ देते हैं, अकबरशाह जिसे दखल नहीं कर सके हैं सिर्फ उसी को छोड़ते हैं।"

राजकुमार ने सब सुनकर कहा—"बात तो अच्छी है, पर यह प्रस्ताव हमारे आगे क्यों होता है ? सन्धि विग्रह के कर्ता महाराज मानसिंह हैं; उन के पास दूत भेजिए।"

उसमान ने कहा—"महाराज के पास एलची भेजा गया था, मगर बदक़िसमती की मार उन के यहां किसी ने मशहूर कर दिया है कि जनाब को पठानों ने मार डाला है। महाराज ने उसी रंज और गुस्से में सुलह का नाम भी न सुना; एलची की बात पर एतबार न किया; अगर आप खुद सुलह के पैग़ामबद हों तो वे जरूर राज़ी होंगे।"

राजपुत्र ने उसमान की ओर फिर स्थिर दृष्टि से देखकर कहा—"सब बात साफ़ साफ़ कहिए। हमारा हस्ताक्षर भेजने

से भी तो महाराज को प्रतीति होने की सम्भावना है; फिर हम को स्वयं क्यों जाने को कहते हैं ?"

उसमान—इस की वजह यह है कि महाराज मानसिंह खुद हम-लोगों की पूरी हालत तो जानते नहीं, आप की जुबानी असली कैफ़ियत जान सकेंगे। और जनाब के जोर देने से मतलब बरारी ज्यादः मुमकिन है, तहरीर से उतनी उमोद नहीं है। सुलह का एक नतीजा इस वक्त यह भी होगा कि आप फिर से क़ैद से रिहा हो जायंगे। इसलिये नवाब कुतलू खां ने यह मुसम्मम कर लिया है कि इस सुलह में आप ज़रूर जोर देंगे।

जगत—पिता के पास जाने में हम असम्मत नहीं हैं।

उसमान—यह सुनकर मुझे निहायत खुशी हुई, मगर एक गुज़ारिश और है। अगर आप इस तरह पर सुलह न करा सकें तो फिर इस किल: में वापस आने का वादा कर जायं।

जगत—"अंगीकार करने ही से लौट आवेंगे इस का क्या निश्चय है ?"

उसमान ने हंसकर कहा—"इस का यक़ीन है, राजपूत की बात कभी नहीं टलती, यह सब लोग जानते हैं।"

राजपुत्र ने सन्तुष्ट हो कर कहा—"हम अंगीकार करते हैं कि पिता से भेंट कर के हम अकेले यहां आवेंगे।"

उसमान—एक बात और भी मंजूर फ़र्माइए, इतना होने ही से हमलोग दिल से ममनून होंगे। आप महाराज से मुलाक़ात होने पर हमलोगों के हस्वख्वाह सुलह कराने की कोशिश करेंगे, यह भी मंजूर फ़र्मा जाइए।

राजपुत्र ने कहा—"सेनापति महाशय! यह अंगीकार हम नहीं कर सकते। बादशाह दिल्ली ने हमलोगों को पठान जय करने के लिए नियुक्त किया है, पठान जय करेंगे। सन्धि के लिए न नियुक्त किया है न सन्धि करेंगे; और न इसका अनुरोध करेंगे।"

उसमान के मुख पर सन्तोष और क्षोभ दोनों का भाव प्रकाश होने लगा; बोले—"कुंअर बहादुर! आप ने राजपूतों के मुताबिक ही जवाब दिया। मगर ग़ौर कर देखिए, आप की रिहाई की और कोई तदबीर नहीं है।"

जगत—हमारी मुक्ति से दिल्लीश्वर को क्या? राजपूतकुल में भी बहुत से राजपुत्र हैं।

उसमान ने कातर होकर कहा—"कुंअर साहब, हमारी राय मानिए, यह ज़िद छोड़ दीजिए।"

जगत—क्यों महाशय?

उसमान—"कुंअर साहब! हम साफ़ बात कहते हैं; आप के ज़रिए से मतलब बरारी होगी, यही समझ कर नवाब साहब अब तक आप को इज्ज़त के साथ रक्खे थे, अगर आप उस के ख़िलाफ़ होंगे तो आप को हर तरह की तकलीफ़ देंगे।"

जगत—"फिर भय प्रदर्शन! अभी ही कारावास की प्रार्थना हम ने आप से की थी।"

उसमान—"कुंअर बहादुर! अगर सिर्फ़ कैदख़ाने ही में रखकर नवाब आसूदः हो जायं तो ग़नीमत समझिएगा।"

युवराज की भौंहें तन गईं; बोले—"न होगा, वीरेन्द्र सिंह के रक्त स्रोत ही को बढ़ावेंगे।" उनका आंखों से अग्निस्फुलिंग निकलने लगे।"

उसमान ने कहा—"मैं रुखसत होता हूं। मेरा काम था वह मैंने किया; क़ुतल का हुक्म दूसरे शख्स की ज़ुबानी सुनियेगा।"

कुछ देर पीछे कथित दूत आया। वह सैनिक पुरुष का वेश धारण किए था, साधारण पदातिक की अपेक्षा कुछ उच्चपदस्थ सैनिक की भांति। उसके साथी और भी चार अस्त्रधारी पदातिक थे। राजपुत्र ने पूछा—"तुम्हें क्या काम है?"

सैनिक ने कहा—"आप को मकान तबदील करना होगा।"

"हम प्रस्तुत हैं, चलो," कहकर राजपुत्र दूत के अनुगामी हुए।

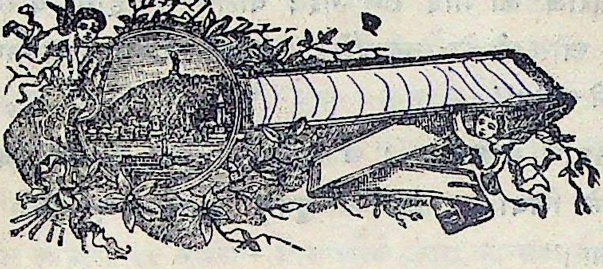

द्वादश परिच्छेद ।

अलौकिक आभरण ।

महोत्सव उपस्थित । आज कुतलू खां का जन्म दिन है । दिन में रंग, नृत्य, दान, आहार, पान इत्यादि में सब लगे थे । रात को उस से भी दूना । अभी तो सन्ध्या उत्तीर्ण हुई है; दुर्ग के भीतर आलोकमय, सैनिक, सिपाही, उमराव, भृत्य, पौरगण, भिक्षुक, मद्यप, नट, नर्तकी, गायक, नायिका, वादक, इन्द्रजालिए, माली, गंधी, तमोली, हलवाई, बिसाती, इन सबों से चारों ओर परिपूर्ण है । जिधर जाओ उधर केवल दीपमाला, गाना बजाना, गन्धवारि, पान, फूल, बाजो, वेश्या, अन्तःपुर के भीतर भी कहीं २ यही रंग है । नवाब का विहार गृह स्थिर है किंतु प्रमोदमय है । कक्ष कक्ष में चांदी के दीप स्फटिक के दीप, गन्ध दीप, स्निग्धो-

उज्वल आलोक बरसा रहे हैं। सुगंधि कुसुम गुच्छे गुलदानों में, स्तम्भों, शय्या, आसन और पुरवासिनियों के अंग पर विराजमान हैं। अब वायु गुलाब गंध के बोझ को नहीं उठा सकती। अगणित दासीगण, कोई सुनहले काम के कपड़े, कोई इच्छानुसार नील, लोहित, श्यामल, पाटल आदि वर्ण की चीनो साटन पहिरे, अपने अंग के स्वर्णालंकारों को प्रत्येक दीपक के आलोक में चमकाती फिरती हैं। वह सब जिनकी जिनकी दासी हैं, वह सब सुन्दरी अपने अपने कक्ष में बैठी शृंगार कर रही हैं। आज नवाब प्रमोद-मन्दिर में आकर सब को साथ लेकर प्रमोद करेंगे, नाच गाना होगा। जिसको जो अभीष्ट होगा वह उसे सिद्ध कर लेगा। कोई आज भाई की नौकरी लगा देने की आशा में सिर में कंघी ज़ोर से दे रही है। दूसरी ने दासी संख्या बढ़ाने की भावना करके अलक गुच्छ वक्षस्थल पर लटका दिया। किसी को नव प्रसूत पुत्र के दान के नाम से कुछ सम्पत्ति हस्तगत करने की अभिलाषा है, इसलिए गंडस्थल पर ललाई विकाश के लिए रगड़ते २ रुधिर निकाल लिया। किसी ने नवाब की किसी प्रेयसी ललना के कहे नव प्राप्त रत्नालंकार के सदृश अलंकार की कामना से आंख में कान तक काजल लगा लिया है। किसी चंडी को वस्त्र पहिराने में दासी ने पेशवाज़ को मसल दिया, चंडी ने उसके गाल में चपत जमा दी। किसी प्रगल्भा के वयो वृद्धि माहात्म्य से केशराशि के भार से क्रमशः जड़ शिथिल हो गई थी, केश विन्यास समय दासी के कंघी देने में कई एक बाल कंघी के साथ निकल आए, यह देखकर केशाधिकारिणी धारा प्रवाही आंखों से फूटकर रोने लगी।

कुसुमभवन में स्थल पद्मिनीवत् विहंगम कुल में कलापिनी-वत् एक सुन्दरी वेश विन्यास कर के हरएक कक्षों में घूम रही थी। आज किसी को कहीं जाने में रोक न थी, जहां पर जो सौन्दर्य्य चाहिए विधाता ने उस सुन्दरी को वह दिया है, जिस स्थान पर जो अलंकार चाहिए, कुतलू खां ने उसे दिया है। तथापि उस रमणी के मुख पर कुछ भी सौन्दर्य गर्व, या अलंकार गर्व का चिन्ह नहीं झलकता। आमोद हंसी कुछ भी नहीं था। मुख कांति गम्भीर, स्थिर, आंखों में कठोर ज्वाला।

विमला इसी भांति पुरी के भीतर हर एक स्थानों में घूमती घूमती एक सुसज्जित कक्ष में गई। भीतर जाकर किवाड़ का अर्गल चढ़ा दिया। इस उत्सव के दिन भी इस कक्ष में केवल एक टिमटिम कर के दीप बल रहा था। कक्ष में एक किनारे एक पलंग था। उस पलंग पर पलंग के चादरे से सिर से पैर तक सर्वाङ्ग ढांके कोई सोया था। विमला ने पलंग के पास खड़ी होकर धीरे से कहा—"मैं आ गई।"

सोए हुए व्यक्ति ने चौंक कर मुंह से कपड़ा उठाया। विमला को पहिचान कर पलंग की चांदनी उतार कर उठ बैठी, कुछ उत्तर न दिया।

विमला ने फिर कहा—

"तिलोत्तमा! मैं आ गई।"

तथापि तिलोत्तमा ने कुछ उत्तर न दिया। स्थिर दृष्टि से विमला के मुख की ओर देखती रही।

अब तिलोत्तमा लज्जा से संकुचित बालिका नहीं है। उस समय उस क्षीणालोक में देखने से जान पड़ता कि दस वर्ष परिमाण वय बढ़ गई है। देह अत्यन्त क्षीण, मुख मलिन। परिधान एक अत्यन्त छोटा मलिन कपड़ा। बिखरे हुए बालों में धूल भरी है। अंग में अलंकार का लेश भी नहीं, केवल पहिले जो सब अलंकार पहिरती थी उन का चिन्ह मात्र रह गया था।

विमला ने फिर कहा—

"मैंने आने को कहा था—आई हूं; बोलती क्यों नहीं?"

तिलोत्तमा ने कहा—"जो बात थी सो कह दिया, अब और क्या कहूँ?"

विमला तिलोत्तमा के स्वर से जान गई कि तिलोत्तमा रो रही थी। मस्तक पर हाथ देकर मुख उठा कर देखा कि आंख के जल से मुख भींग रहा है। अंचल छू कर देखा—अंचल बिलकुल तर है। जिस तकिया पर तिलोत्तमा सिर रख कर सोई थी उस पर हाथ रख कर देखा—वह भी तर है। विमला ने कहा—"रात दिन इस भांति रोने से शरीर कै दिन चलैगा?"

तिलोत्तमा ने कहा—"रहने का क्या काम है? इतने दिन क्यों रहा यही मनस्ताप है।"

विमला निरुत्तर होकर आप भी रोने लगी।

कुछ देर पीछे विमला ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा—"अब आज का उपाय।"

तिलोत्तमा ने असंतोष के साथ विमला के अलंकारादि की ओर देख कर कहा—"उपाय का कौन प्रयोजन है?"

विमला ने कहा—"बेटी, बात उड़ा न दे, क्या अब तक कुतलू खां का रूप भली भांति नहीं पहिचाना ? अपने अनवकाश तथा हम लोगों को शोकनिवारण करने का अवकाश देने के अभिप्राय से, अब तक उस दुष्ट ने हम लोगों को छोड़ रक्खा है; आज ही तक हमलोगों के अवसर की सीमा है, यह पहिले ही कह चुका है। इस से आज हम लोगों को नाच घर में न देखने से न जाने कौन उपद्रव आवैगा, यह हम नहीं कह सकते।"

तिलोत्तमा ने कहा—"और कौन उपद्रव ?"

विमला ने कुछ स्थिर भाव से कहा—"अब तिलोत्तमा ! एक वारही निराश क्यों होती हो ? अब तक हम लोगों का प्राण बचा है, धर्म बचा है; जब तक प्राण रहैगा, धर्म बचावैंगे।"

तिलोत्तमा बोल उठी—"तो फिर मा ! यह सब गहने उतार फेंको, तुम्हारा गहना पहिरना हमें चक्षुशूल हो रहा है।"

विमला ने मुसकिरा के कहा—"बेटी ! बिना हमारे सब गहनों को देखे हमें तिरस्कार न करना।"

यह कह कर विमला ने अपने कपड़े के नीचे छिपाई हुई एक तीक्ष्ण धार छुरी निकाली; दीपशिखा में उसका सान धरा हुआ फल बिजली को भांति चमक उठा; तिलोत्तमा विस्मिता हो गई, मुंह सूख गया, पूछा—"यह कहां पायी ?"

विमला ने कहा—"कल से एक नई दासी अंतःपुर में आई है, उसे तुम ने देखा है ?"

तिलोत्तमा—हां, देखा है—आसमानी आई है।

विमला—आसमानी के द्वारा अभिराम स्वामी के पास से इसे मंगाया है।

तिलोत्तमा चुप रही, उसका हृदय कांपने लगा। क्षण भर पीछे विमला ने पूछा—"आज तुम यह वेश न त्याग करोगी?"

तिलोत्तमा ने कहा—"नहीं।"

विमला—नाच गान में न जाओगी?

तिलोत्तमा—नहीं।

विमला—इस से छुट्टी थोड़े ही मिलनी है।

तिलोत्तमा रोने लगी। विमला ने कहा—

"थिर होके सुनो, हमने तुम्हारे निस्तार का उपाय किया है।" तिलोत्तमा आग्रह पूर्वक विमला का मुख देखने लगी, विमला ने उसमान की दी अंगूठी तिलोत्तमा के हाथ में देकर कहा—यह अंगूठी रक्खो, नाचघर में मत जाना, आधीरात के इधर उत्सव समाप्त न होगा, तब तक हम पठान को वश्य रक्खैंगी, हम तुम्हारी विमाता हैं, यह उसे विदित हो गया है। तुम हमारे सामने न आ सकोगी, यह कहकर नाचगाना समाप्त होने तक उस की तुम्हें देखने की इच्छा को रोक सकैंगी। आधीरात के समय अन्तःपुर के द्वार पर जाना, वहां एक मनुष्य तुम्हें एक ऐसी ही अंगूठी दिखावैगा। तुम निर्भय उसके साथ चली जाना, जहां ले जाने कहोगी वह तुम्हें वहीं पहुंचा देगा। तुम अभिरामस्वामी की कुटी में पहुंचाने के लिए कहना।"

तिलोत्तमा सुनकर चौंक उठी। चाहे विस्मय से या आह्लाद से थोड़ी देर तक कुछ बोल न सकी। पीछे बोली—"यह क्या वृत्तान्त है! यह अंगूठी तुम्हें किस ने दी?"

विमला ने कहा—"इसकी बहुत सी बात है। दूसरे समय अवकाश में कहेंगी। इस समय जो कहा है निःसंकोच चित्त से वही करना।"

तिलोत्तमा ने पूछा—"तुम्हारी कौन गति होगी? तुम कैसे बाहर निकलोगी?"

विमला ने कहा—"हमारे लिए चिन्ता मत करो। हम किसी दूसरे उपाय से बाहर निकल कर कल सबेरे तुम से मिलेंगी।"

यह कह कर विमला ने तिलोत्तमा को प्रबोध किया। परंतु उसने तिलोत्तमा के लिए अपनी मुक्ति का पथ जो बंद किया, वह तिलोत्तमा न समझ सकी।

अनेक दिन से तिलोत्तमा के मुँह पर हंसी नहीं थी, आज विमला की बात सुन कर तिलोत्तमा का मुख मारे हर्ष के खिल उठा।

विमला देखकर भीतर से पुलकित हुई। गद्गद स्वर से बोली—"तो इस समय मैं जाती हूं।"

तिलोत्तमा ने कुछ संकोच के साथ पूछा—"जान पड़ता है तुम ने दुर्ग के सब समाचार जान लिया है। हमलोगों के आत्मीयलोग कहां हैं? कौन कैसे हैं, बताती जाओ।"

विमला ने देखा—इस विपदसागर में भी जगतसिंह तिलोत्तमा के मन में विराजमान हैं। विमला ने जो निष्ठुर पत्र राजपुत्र से पाया है कि जिस में तिलोत्तमा का नाम भी नहीं लिखा है, उसकी बात सुनने से तिलोत्तमा का जला हुआ जी और भी जल जायगा;

इसलिए उस का समाचार कुछ भी न कहकर कहा—“ जगतसिंह इसी दुर्ग में हैं, शरीर से कुशलपूर्वक हैं । ”

तिलोत्तमा चुप हो रही ।

विमला आंख पोछते पोछते वहां से चली गई ।

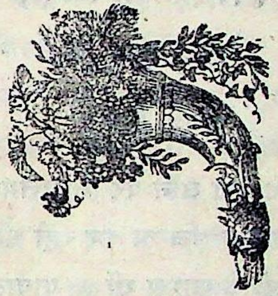

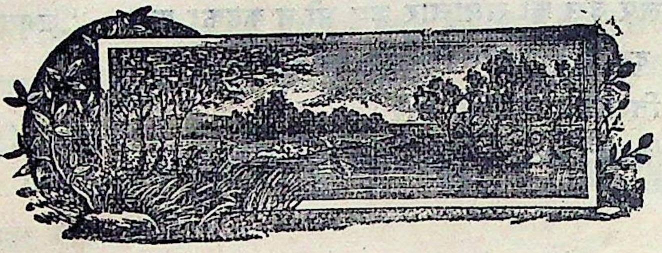

त्रयोदश परिच्छेद ।

अंगूठी दिखाना ।

विमला के चले जाने पर तिलोत्तमा अकेली कक्ष में बैठी हुई जो सब चिन्ता कर रही थी वह सुख और दुःख दोनों ही के कारण थीं । पापात्मा के पिंजड़े से छूटने का उपाय सहज में हो गया, यह बात प्रति मुहूर्त स्मरण आने लगी, किन्तु केवल यही बात नहीं है, विमला उसे प्राणाधिक स्नेह करती है, विमला ही के द्वारा छुटकारे का उपाय हुआ, इस का पुनः पुनः हृदय में आन्दोलन कर के दूनी सुखी होने लगी, फिर सोचने लगी—"उद्धार होने पर कहां जायं? अब क्या पितृगृह है?" तिलोत्तमा फिर रोने लगी । सब चिंता को दबा कर एक चिंता और भी उठी—"तो राजकुमार कुशल पूर्वक हैं? किस दशा में हैं? वह क्या बन्दी हैं?" यह सोचते सोचते तिलोत्तमा वाष्पाकुल लोचना होने लगी—"हा अदृष्ट! राजपुत्र हमारे ही लिए बन्दी हुए। उन के चरणों में प्राण देने से भी

क्या इस का बदला चुकैगा ? हम उन के लिए क्या कर सकती हैं ?" फिर सोचने लगी—"वह क्या कारागार में हैं ? वह कारागार कैसा है ? क्या वहां और कोई नहीं जाने पाता ? वह वहां बैठे क्या सोचते होंगे ? तिलोत्तमा भी कोई है यह उन को कभी ध्यान आता होगा ? आता क्यों न होगा ? हमीं तो इस यंत्रणा की मूल हैं ! न जानें मन ही मन हमें क्या क्या कटुवाक्य कहते होंगे ?" फिर सोचने लगी—"यह क्या ? मैं यह क्या सोच रही हूं ? वह क्या कभी किसी को कटु कहते हैं ? यह नहीं है, हां, यही आशंका है कि कहीं भूल न गए हों। अथवा मैं यवनगृहवासिनी हूं यह समझ कर अपने मन में स्थान न दें।" फिर सोचा—"नहीं, नहीं,—ऐसा क्यों करेंगे ? जैसे वह दुर्ग में बन्दी हैं, वैसे ही हम भी बन्दी ही हैं; तो फिर क्यों घृणा करेंगे ? तिस पर भी यदि करेंगे तो हम पैर पकड़ समझावेंगी, क्या न मानेंगे ? क्यों न मानेंगे ? जो नहीं ही मानेंगे तो मैं उन के सामने प्राणत्याग करूंगी। पहिले आग में परीक्षा होती थी, अब वह तो होती नहीं; नहीं सही, हम उन के सामने आग में प्राण ही त्याग करेंगी, फिर सोचा—उन का दर्शन देखें कब होता है ? वह कैसे मुक्त होंगे ? हमारे मुक्त होने से कौन काम सिद्ध हुआ ? यह अंगूठी विमला ने कहां पाई ? उनकी मुक्ति के लिए यह कौशल नहीं हो सकता ? यह अंगूठी उन के पास भेजने से नहीं हो सकता ? हमें कौन लिवाने आवैगा ? उस के द्वारा क्या कोई उपाय नहीं हो सकता ? अच्छा, उस से पूछैंगी, देखैं, क्या कहता है। क्या एक बेर भेंट भी नहीं हो सकती ?" फिर कहती—"भेंट कैसे करूंगी ? और भेंट

होने ही पर क्या बात करूंगी ? कौन बात कह कर मन की ज्वाला बुझाऊंगी ?"

तिलोत्तमा अविरत चिंता करने लगी।

इतने में एक परिचारिका आई। तिलोत्तमा ने उस से पूछा—"कितनी रात गई ?"

दासी ने कहा—"आधी रात हो गई।" तिलोत्तमा दासी के बाहर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। दासी अपना काम कर के चली गई; तिलोत्तमा विमला की दी अंगूठी लेकर कक्ष से निकली। उस समय फिर मन में आशंका होने लगी, पैर कांपने लगा, हृदय कांपने लगा, मुंह सूखने लगा; एक पांव आगे रखती तो एक पीछे; क्रमशः साहस कर के अंतःपुर द्वार तक आई। पुरवासी गण, खोजा, हबशी प्रभृति सब प्रमोद में मत्त हो रहे हैं; किसी ने उसे न देखा, देखा भी तो उस की ओर ध्यान न किया; किन्तु तिलोत्तमा को जान पड़ने लगा मानो सब लोग उसी की ओर लक्ष कर रहे हैं। किसी प्रकार से अंतःपुरद्वार तक पहुंची; वहां प्रहरी लोग आनन्द में उन्मत्त हैं। कोई निद्रित, कोई जाग्रत् में अचेतन, और कोई अर्द्ध चैतन्य है। उस को किसी ने लक्ष न किया। एक व्यक्ति द्वार पर खड़ा था, वह भी प्रहरी वेशधारी था। उस ने तिलोत्तमा को देखकर पूछा—"आप के हाथ में अंगूठी है ?"

तिलोत्तमा ने डरते २ विमला की दी हुई अंगूठी दिखाई। प्रहरीवेशी मनुष्य ने भली भांति उस अंगूठी को देखकर अपनी अंगूठी तिलोत्तमा को दिखायी, और कहा—"हमारे साथ आइए, कुछ खौफ न कीजिए।"

तिलोत्तमा चंचल चित्त से प्रहरी के पीछे पीछे चली, अंतःपुर-द्वार पर प्रहरीगण जैसे शिथिल भावापन्न थे, प्रायः सभी स्थान पर प्रहरीगण वैसे ही शिथिल थे। विशेष आज कोई रोक टोक नहीं है, किसी ने कुछ न कहा। प्रहरी तिलोत्तमा को लेकर नाना द्वार, नाना प्रकोष्ठ, नाना प्रांगणभूमि, अति क्रम कर के आने लगा। अंत में दुर्ग के बाहरी फाटक पर आकर कहा—"अब कहां चलेंगी? फर्माइए, वहीं ले चलूं।"

विमला ने क्या कह दिया था यह तिलोत्तमा को स्मरण न हुआ। पहिले जगत सिंह स्मरण आए। जी में आया प्रहरी से कहैं—"जहां राजपुत्र हैं वहीं ले चलो," परन्तु पूर्व शत्रु लज्जा ने आकर वैर लिया। बात मुंह तक आकर रह गई। प्रहरी ने फिर पूछा—"कहां ले चलूं?"

तिलोत्तमा कुछ भी न बोल सकी, मानो ज्ञानशून्या हो गई, आप से आप हृत्कंप होने लगा। आंख से दिखाई और कान से सुनाई न पड़ता। मुंह से क्या निकल गया यह भी कुछ न समझ सकी, प्रहरी के कान में अर्द्ध स्पष्ट—"जगत सिंह" शब्द ने प्रवेश किया।

प्रहरी ने कहा—"जगतसिंह इस वक्त क़ैदखाने में बंद हैं; वहां दूसरा और कोई नहीं जा सकता। मगर हमें यह हुक्म है कि आप जहां जाना चाहैं वहीं पहुंचा दें; आइए।"

प्रहरी दुर्ग में फिर लौटा। तिलोत्तमा क्या कर रही है, कहां जा रही है, कुछ न समझ कर कल की पुतली की नाईं फिरी, इसी

भाव से उस के साथ साथ चली। प्रहरी ने कारागार द्वार पर आकर देखा कि जैसे और द्वारों पर प्रहरीगण प्रमोदासक्त होकर अपने काम में शिथिल होरहे हैं, वैसे यहां नहीं हैं; सब अपने २ स्थान पर सतर्क हैं। एक व्यक्ति से पूछा—राजपुत्र कहां हैं? उस ने उंगली से दिखा दिया। अंगूठी लाने वाले प्रहरी ने कारागार-रक्षक से पूछा—"क़ैदी इस समय सोते हैं या जागते?" कारागार रक्षक कक्षद्वार तक जाकर लौट आया और कहा—"क़ैदी ने जवाब दिया कि जागते हैं।"

अंगूठी लानेवाले प्रहरी ने कहा—"हमें दर्वाज़ा खोल दो, यह औरत मुलाक़ात करने जायगी"

रक्षक ने चमत्कृत हो कर कहा—"यह क्या? तुम क्या नहीं जानते कि ऐसा हुकम नहीं है?"

अंगूठी लानेवाले ने उसमान की सांकेतिक अंगूठी कारागार-रक्षक को दिखायी, उस ने तुरंत सिर झुका लिया और द्वार खोल दिया।

राजकुमार कक्ष के भीतर एक सामान्य चारपाई पर सोए थे, द्वार खुलने के शब्द से कौतूहली होकर द्वार की ओर देखने लगे। तिलोत्तमा बाहर की ओर द्वार की देहली तक आकर आगे न बढ़ सकी। आगे पैर नहीं बढ़ता, चौखट पकड़ कर खड़ी हो गई।

अंगूठी लानेवाले ने तिलोत्तमा को भीतर जाने में अनिच्छुक देखकर पूछा—"यह क्या? आप यहां देर क्यों करती हैं?" तथापि तिलोत्तमा का पांव न उठा।

प्रहरी ने फिर कहा—न जाइए तो लौट चलिए, यह खड़े होने की जगह नहीं है।

तिलोत्तमा लौटने के लिए उद्यत हुई, अब इधर भी पांव नहीं उठता। क्या करै! प्रहरी घबड़ाया। सोचते सोचते अपने अनजान में तिलोत्तमा एक पांव आगे बढ़ी। तिलोत्तमा कक्ष के भीतर गई।

कक्ष में प्रवेश करते ही राजपुत्र को देखते ही तिलोत्तमा की गतिशक्ति फिर जाती रही, फिर द्वार के पास दीवार पकड़ कर नीचा मुंह किए खड़ी रही।

राजपुत्र पहिले तो तिलोत्तमा को पहिचान ही न सके। स्त्री को देख कर विस्मित हुए। रमणी दीवार पकड़ कर नीचा मुंह किए खड़ी रह गई, पास नहीं आई। यह देखकर और भी विस्मयापन्न हुए। चारपाई से उठकर द्वार के पास आए। निरीक्षण करके देखा, पहिचान गए।

तिलार्द्ध मात्र के लिए आंख से आंख मिली। तत्क्षण तिलोत्तमा की आंख पृथ्वी की ओर झुक गई, किन्तु शरीर कुछ आगे की ओर झुका; मानो राजपुत्र के पैर पर गिरैगी।

राजपुत्र कुछ पीछे होकर खड़े हो गए; तिलोत्तमा की देह वैसी ही मन्त्रमुग्धवत् स्तम्भित होकर स्थिर रह गई। क्षणभर के लिए हृदयकमल खिलकर फिर मुरझा गया। राजपुत्र बोले—

"वीरेन्द्रसिंह की कन्या?"

तिलोत्तमा के हृदय में शूल बिंध गया। "वीरेन्द्रसिंह की

कन्या ?" अब क्या यही सम्बोधन होगा ? जगतसिंह क्या तिलो-त्तमा का नाम भी भूल गए ? थोड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे। फिर राजपुत्र ने कहा—

"यहां किस अभिप्राय से आई ?"

"यहां किस अभिप्राय से आई ?" कैसा प्रश्न है ! तिलोत्तमा का सिर घूमने लगा। चारों ओर कक्ष, शय्या, दीपक, दीवार सभी मानो घूम रहे हैं; अवलंबन के लिए दीवार से सिर लगाकर खड़ी हुई।

राजपुत्र देर तक प्रत्युत्तर की प्रत्याशा में खड़े रहे; प्रत्युत्तर दे कौन ? प्रत्युत्तर की सम्भावना न देखकर कहा—"तुम्हें यंत्रणा होती है, लौट जाओ, पहिले की बातें भूल जाओ।"

तिलोत्तमा को अब तनिक भी भ्रम न रहा। अकस्मात् वृक्ष-च्युत वल्लरी की भांति पृथ्वी पर धड़ से गिर पड़ी।

चतुर्दश परिच्छेद ।

मोह ।

जगतसिंह ने पास आकर देखा—तिलोत्तमा की सांस नहीं चलती। अपने कपड़े से वायु करने लगे; तथापि उस में कोई भी संज्ञा का चिन्ह न देख कर प्रहरी को पुकारा।

तिलोत्तमा का संगी उन के पास आया। जगतसिंह ने उस से कहा—"यह अकस्मात् मूर्च्छित हो गई हैं, इन के साथ जो आया हो उसे इनकी शुश्रूषा करने के लिए कह दो।"

प्रहरी ने कहा—"सिर्फ मैं ही तो साथ आया हूं। राजपुत्र ने आश्चर्य से पूछा—"तुम्हीं?"

प्रहरी ने कहा—"और कोई नहीं आया है।"

"तब कौन उपाय किया जाय? किसी महल की दासी को बुलाओ।" प्रहरी चला। राजपुत्र ने फिर उसे पुकार कर कहा—"सुनो, और किसी को संवाद देने में गड़बड़ होगी; और आज की रात प्रमोद छोड़ कर कौन इन की सहायता के लिये आने वाला है?"

प्रहरी ने कहा—"यह भी सही है। और पहरेदार लोग ही किस को क़ैदखाने के अन्दर आने देंगे? और और आदमियों को यहां क़ैदख़ाने में लाने की हिम्मत हमें नहीं है।"

राजपुत्र ने कहा—"तब क्या करें ? इस का एक ही उपाय है—तुम झटपट किसी दासी के द्वारा नवाबपुत्री को यह सम्बाद दो।"

प्रहरी दौड़ कर इसी अभिप्राय से चला। राजपुत्र यथासाध्य तिलोत्तमा की शुश्रूषा करने लगे। उस समय राजपुत्र मन में क्या सोच रहे थे, कौन कह सकता है ? आंख में जल आया था कि नहीं, कौन कह सकता है ?

राजकुमार अकेले, तिलोत्तमा की दशा देखकर अत्यन्त घबड़ाए। कहीं आयषा के पास सम्बाद न पहुंच सका, कहीं आयषा कोई उपाय न कर सकी, तो क्या होगा ?

तिलोत्तमा को क्रमशः कुछ कुछ संज्ञा होने लगी। उसी समय राजपुत्र ने देखा कि द्वार की ओर दो स्त्रियां आ रही हैं, एक घूंघट किए है। दूर ही से घूंघटवाली का उन्नत शरीर, संगीत मधुर पदविन्यास, लावण्यमय ग्रीवाभंगी देखकर राजपुत्र जान गए कि दासी के साथ आयषा आप ही आ रही हैं, और मानो साथ ही साथ आशा भी आ रही है।

आयषा और दासी के प्रहरी के साथ कारागार द्वार पर पहुंचने पर द्वाररक्षक ने अंगूठी लानेवाले प्रहरी से पूछा—"क्या इन लोगों को भी जाने देना होगा ?"

अंगूठी लानेवाले ने कहा—"तुम जानो, हम नहीं जानते।" रक्षक ने कहा—"बहुत अच्छा" यह कहकर स्त्रियों को भीतर जाने से रोका। आयषा ने मुख से घूंघट टालकर कहा—"पहरे-

दार ! हमें जाने दो: अगर इस में कोई नुकसान हो तो तुम हमारे ऊपर इलज़ाम देना।"

प्रहरी आयषा को पहिचानता नहीं था। परन्तु दासी ने कान में कह दिया। प्रहरी ने आश्चर्य में आकर अभिवादन किया और हाथ जोड़कर बोला—"तावेदार का क़सूर माफ़ हो, हुज़ूर को कहीं जाने में रोक नहीं है।"

आयषा ने कारागार में प्रवेश किया। उस समय वह हंसती नहीं थी, परन्तु मुख आप ही सहास्य था, जान पड़ता कि हंस रही है। कारागार की श्री बदल गई, किसी को ज्ञात न हुआ कि यह कारागार है।

आयषा ने राजकुमार को अभिवादन करके कहा—"कुंअर बहादुर ! यह क्या हाल है?"

राजपुत्र क्या उत्तर दें? उत्तर न देकर भूतलशायिनी तिलोत्तमा को उंगली से दिखा दिया।

आयषा ने तिलोत्तमा को देखकर पूछा—"यह कौन हैं?"

राजपुत्र ने संकुचित होकर कहा—"वीरेन्द्रसिंह की बेटी।"

आयषा तिलोत्तमा को गोद में लेकर बैठ गई। और कोई होता तो कुछ संकोच करता, सात पांच करता, आयषा ने एकबारगी गोद में उठा लिया।

आयषा जो कुछ करती वही सुन्दर दिखाई पड़ता, सब काम सुन्दर रीति से कर सकती, जब तिलोत्तमा को गोद में ले बैठी, जगतसिंह और दासी दोनों ने मन में सोचा—"क्या सौन्दर्य है!"

दासी के हाथ आयषा गुलाब जल आदि लिवा लाई थी।

तिलोत्तमा को वह सब सेवन और सिंचन कराने लगी। दासी हवा करने लगी। तिलोत्तमा को पहिले ही से चेत आ रहा था, अब आयषा की शुश्रूषा से पूरा पूरी संज्ञा प्राप्त हो गई।

चारों ओर देखते ही पूर्वकथा स्मरण हो आई। उसी समय तिलोत्तमा कक्ष के बाहर जाना चाहती थी, किन्तु इस समय के शारीरिक और मानसिक परिश्रम से क्षीण शरीर अवसन्न हो गया, न जा सकी; पूर्वकथा स्मरण होते ही, सिर घूम गया और वैसे ही फिर बैठ गई। आयषा ने उस का हाथ पकड़ कर कहा—

"बहिन! तुम क्यों घबड़ाती हो? तुम इस वक्त निहायत कमज़ोर हो रही हो, हमारे मकान पर चल कर आराम करो, फिर जब तुम्हारा जी चाहैगा जहां कहोगी वहां पहुंचवा दूँगी।"

तिलोत्तमा ने उत्तर न दिया।

आयषा प्रहरी के मुख से जो जो वह जानता था सब सुन चुकी थी, इस से तिलोत्तमा के मन में सन्देह की आशंका से कहा—

"हमारा एतबार क्यों नहीं करतीं? हम तुम्हारे दुश्मन की बेटी ज़रूर हैं, मगर यह समझ कर हमें नामोतबिर न समझना। हमारे ज़रिए से कोई बात ज़ाहिर न होगी। सुबह होने के कबल ही जहां कहोगी लौंडी के साथ पहुंचवा दूंगी। कोई किसी बात को ज़ाहिर न करैगा।"

यह बात आयषा ने ऐसे सुमिष्ट स्वर से कही कि तिलोत्तमा को उस के प्रति तनिक भी अविश्वास न रह गया, और फिर इस

समय चल भी नहीं सकती, जगत सिंह के पास बैठी भी नहीं रह सकती। इसलिए स्वीकार किया। आयषा ने कहा—

" तुम तो चल सकोगी नहीं। इसी बांदी पर सारे बदन का बोझ देकर चलो।"

तिलोत्तमा दासी के कंधे पर हाथ रखकर उस के अवलंब से धीरे धीरे चली। आयषा नें भी राजपुत्र से विदा ली। राजपुत्र उस के मुंह की ओर देखने लगे, मानो कुछ कहेंगे। आयषा ने भाव समझ कर दासी से कहा—" तुम हमारे सोने के कमरे में इन्हें पहुंचा कर फिर आकर हमें लिवा जाना।'

दासी तिलोत्तमा को लिवा कर चली।

जगत सिंह ने मन ही मन कहा—" हमारी तुम्हारी देखा देखी बस यही अंतिम है।" लंबी सांस लेकर चुप चाप हो रहे। जब तक तिलोत्तमा दिखाई दी, उसी की ओर देखते रहे।

तिलोत्तमा भी यही सोच रही थी—" हमारी यही अंतिम भेंट है।" जब तक दृष्टि के आगे थी उलट कर न देखा। जब उलट कर देखा जगत सिंह दिखाई न पड़े।

अंगूठी लानेवाले ने तिलोत्तमा के पास आ कर पूछा—" तो हम रुख़सत हों ?"

तिलोत्तमा ने उत्तर नहीं दिया। दासी ने कहा—"हां!" प्रहरी ने कहा—" आप के पास जो निशानवाली अंगूठी है उसे लौटा दीजिए।"

तिलोत्तमा ने अंगूठी प्रहरी को दी, वह बिदा हुआ।

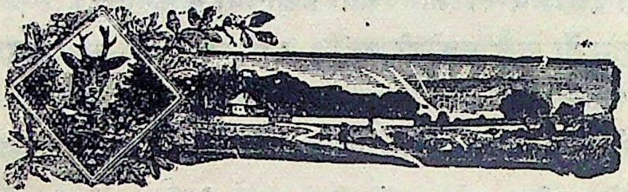

पंचदश परिच्छेद ।

मुरूकंठ ।

तिलोत्तमा और दासी के कक्ष के बाहर चले जाने पर आयषा पलग पर आ बैठी । वहां और कोई आसन बैठने का नहीं था; जगत सिंह खड़े रहे ।

आयषा जूड़े में से एक गुलाब निकाल कर उस के दलों को नख से बिखेरते बिखेरते कहने लगी—"कुंअर साहब ! अन्दाज़ से जान पड़ता है कि आप हम से कुछ फ़र्मावेंगे । अगर हमारे ज़रिये से कोई काम हो सकता हो तो उस के कहने में किसी तरह का हिजाब न कीजिएगा । हमें आप का काम अंजाम देने में निहायत खुशी होगी ।"

राजकुमार ने कहा—"नवाबपुत्रि ! इस समय हमें किसी वस्तु का विशेष प्रयोजन नहीं है । इस के लिए आप से मिलने की अभिलाषा नहीं की थी । हमारी यही बात थी, कि जो दशा हमारी है, उस दशा में, आप के साथ फिर भेंट होगी, ऐसी आशा नहीं है,

जान पड़ता है, यही अंतिम भेंट है। आप के निकट जिस ऋण में आवद्ध हैं उस का प्रतिशोध बातों से क्या करें? और कार्य्य से भी कभी उस का प्रतिशोध कर सकेंगे, इस अदृष्ट से यह भरोसा नहीं है। पर हां, यही भिक्षा है, कि यदि कभी साध्य हो, यदि कभी दूसरा दिन पलटै, तो हमारे प्रति आज्ञा करने में सकोच न करें। बहिन जैसे भाई से कोई आदेश करने के समय संकोच छोड़ देती है, आप भी वैसा ही करें।"

जगत सिंह का स्वर ऐसा कातर और नैराश्यव्यंजक था कि उस से आयषा भी दुःखित हो गई। आयषा ने कहा--"आप ऐसे नाउमीद क्यों होते हैं? एक दिन की बदखाइत दूसरे दिन नहीं रहती।"

जगत सिंह ने कहा—"हम निराश नहीं होते, परन्तु अब आशा बांधने की इच्छा हमें नहीं होती। इस जीवन को त्याग करने के व्यतीत धारण करने की इच्छा नहीं होती। इस कारागार को त्याग करने की वासना नहीं होती।"

जिस करुण स्वर से राजपुत्र ने यह बात कही, उस से आयषा विस्मित हुई, अत्यन्त कातर हुई। अब उस समय नवाबपुत्री भाव न रह गया; दूरता न रह गयी, स्नेहमयी रमणी ने, रमणी की नाईं, यत्न के साथ, कोमल करपल्लव से राजपुत्र का हाथ पकड़ लिया, तुरन्त ही हाथ छोड़ कर राजपुत्र के मुख की ओर मुख उठा कर कहा—"कुंअर साहब! यह जांकाह सदमः तुम्हारे दिल में क्यों होती है? हमें ग़ैर न ख़याल करो। अगर इजाज़त दो तो कहें, यह वीरेन्द्र सिंह की बेटी क्या—"

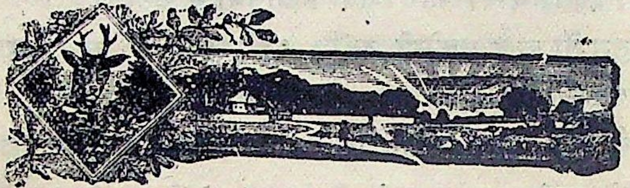

पंचदश परिच्छेद ।

मुक्तकंठ ।

तिलोत्तमा और दासो के कक्ष के बाहर चले जाने पर आयषा पलग पर आ बैठी। वहां और कोई आसन बैठने का नहीं था; जगत सिंह खड़े रहे।

आयषा जूड़े में से एक गुलाब निकाल कर उस के दलों को नख से बिखेरते बिखेरते कहने लगी—"कुंअर साहब! अन्दाज़ से जान पड़ता है कि आप हम से कुछ फ़र्मावेंगे। अगर हमारे ज़रिये से कोई काम हो सकता हो तो उस के कहने में किसी तरह का हिजाब न कीजिएगा। हमें आप का काम अंजाम देने में निहायत खुशी होगी।"

राजकुमार ने कहा—"नवाबपुत्रि! इस समय हमें किसी वस्तु का विशेष प्रयोजन नहीं है। इस के लिए आप से मिलने की अभिलाषा नहीं की थी। हमारी यही बात थी, कि जो दशा हमारी है, उस दशा में, आप के साथ फिर भेंट होगी, ऐसी आशा नहीं है,

जान पड़ता है, यही अंतिम भेंट है। आप के निकट जिस ऋण में आबद्ध हैं उस का प्रतिशोध बातों से क्या करें? और कार्य्य से भी कभी उस का प्रतिशोध कर सकेंगे, इस अदृष्ट से यह भरोसा नहीं है। पर हां, यही भिक्षा है, कि यदि कभी साध्य हो, यदि कभी दूसरा दिन पलटै, तो हमारे प्रति आज्ञा करने में सकोच न करें। बहिन जैसे भाई से कोई आदेश करने के समय सकोच छोड़ देती है, आप भी वैसा ही करें।"

जगत सिंह का स्वर ऐसा कातर और नैराश्यव्यंजक था कि उस से आयषा भी दुःखित हो गई। आयषा ने कहा--"आप ऐसे नाउमीद क्यों होते हैं? एक दिन की बदसाइत दूसरे दिन नहीं रहती।"

जगत सिंह ने कहा—"हम निराश नहीं होते, परन्तु अब आशा बांधने की इच्छा हमें नहीं होती। इस जीवन को त्याग करने के व्यतीत धारण करने की इच्छा नहीं होती। इस कारागार को त्याग करने की वासना नहीं होती।"

जिस करुण स्वर से राजपुत्र ने यह बात कही, उस से आयषा विस्मित हुई, अत्यन्त कातर हुई। अब उस समय नवाबपुत्री भाव न रह गया; दूरता न रह गयी, स्नेहमयी रमणी ने, रमणी की नाईं, यत्न के साथ, कोमल करपल्लव से राजपुत्र का हाथ पकड़ लिया, तुरन्त ही हाथ छोड़ कर राजपुत्र के मुख की ओर मुख उठा कर कहा—"कुंअर साहब! यह जांकाह सदमः तुम्हारे दिल में क्यों होती है? हमें ग़ैर न खयाल करो। अगर इजाज़त दो तो कहैं, यह वीरेन्द्र सिंह की बेटी क्या—"

आयषा की बात शेष न होते होते ही राजकुमार ने कहा—

" उस बात से अब कौन काम है ? वह स्वप्न अब दूर हो गया ।"

आयषा चुप रही; जगत सिंह भी चुप रहे, दोनों बहुत देर तक चुप रहे । आयषा सिर नीचा किए रही ।

राजपुत्र अकस्मात् चौंक उठे; उन के करपल्लव पर गरम अश्रु-बिन्दु गिरा । जगतसिंह ने नीची दृष्टि करके आयषा के मुख कमल की ओर निरीक्षण करके देखा, आयषा रो रही है; उज्ज्वल गंड-स्थल पर धारा पर धारा बह रही है ।

राजपुत्र ने विस्मित होकर कहा—" यह क्या आयषा ? तुम रोती हो ?"

आयषा ने कुछ उत्तर न देकर हाथ के गुलाब को निःशेष छिन्न कर डाला । पुष्प के शत खंड होने पर कहा—

" युवराज ! आज तुम से इस तरह पर रुख़सत होऊंगी यह कभी ख़याल में न था । मैं सब बर्दाश्त कर सकती हूं, मगर इस कैदख़ाने में तुम्हें अकेला इस भारी रंज भोगने के लिए छोड़ जाना, यह मुझ से न होगा । जगतसिंह ! तुम हमारे साथ बाहर आओ, अस्तबल में घोड़ा बंधा है, खोल देंगी; आज ही रात को अपने डेरे में चले जाइओ ।"

यदि उस समय इष्टदेवी भवानी भी आकर वरप्रदा होतीं तो भी राजपुत्र इतने चमत्कृत न होते । पहिले तो राजपुत्र कुछ उत्तर ही न दे सके । आयषा ने फिर कहा—

" कुंअर बहादुर ! जगतसिंह ! आओ ।"

जगतसिंह ने बड़ी देर पीछे कहा—"आयषा! तुम हमें कारागार से छुड़ा दोगी?"

आयषा ने कहा—"इसी दम।"

राज०—अपने पिता के अनजान में?

आय०—इस के लिए फ़िक्र मत करो—तुम्हारे डेरे पर पहुंच जाने के बाद उन्हें ख़बर दूंगी।

"प्रहरी लोग क्यों जाने देंगे?"

आयषा ने गले से रत्नहार उतार कर दिखाया और कहा—

"इस इनाम की लालच से वे लोग रास्ता छोड़ देंगे।"

राजपुत्र ने कहा—"इस बात के प्रकाश हो जाने पर तुम अपने पिता से यंत्रणा पाओगी?"

"उस में हर्ज क्या है?"

"आयषा! हम न जायंगे।"

आयषा का मुख सूख गया। क्षुण्ण होकर पूछा—"क्यों?"

राज०—तुम्हारे हाथ से प्राणदान तक पाया है, जिस में तुम्हें यंत्रणा हो ऐसा काम कदापि न करेंगे।

आयषा ने रुद्धकंठ से कहा—"हक़ीक़त में न जाओगे?"

राजकुमार ने कहा—"तुम अकेली ही जाओ।"

आयषा फिर चुप हो रही। फिर आंखों से धारा पर धारा प्रवाहित होने लगी। आयषा कष्ट से आंसू रोकने लगी।

राजपुत्र आयषा के भीतर ही भीतर रोने पर चमत्कृत हुए, कहा—"आयषा! रोती क्यों हो?

आयषा ने कुछ न कहा—राजपुत्र ने फिर कहा—"आयषा!

हमारा अनुरोध रक्खो, यदि रोने का कारण कहने योग्य हो तो हम से प्रकाश करो। यदि हमारे प्राणदान करने से, तुम्हारे इस नीरव रोदन का कारण दूर हो, तो हम वैसा ही करेंगे। हमारे बन्दित्व स्वीकार करने ही से तुम्हारे आंख में जल नहीं आ सकता। तुम्हारे पिता के कारागार में हमारी नाईं न जानें कितने बन्दियों ने कष्ट पाया होगा।"

आयषा ने उस समय राजकुमार की बात का उत्तर न देकर अंचल से अश्रु जल पोंछा। क्षणभर चुप रहने के पीछे कहा—

"कुंअर साहब! अब मैं न रोऊंगी।"

राजपुत्र प्रश्न का उत्तर पाने से कुछ क्षुब्ध हुए। फिर दोनों ने सिर नीचा कर लिया।

प्रकोष्ठ की दीवार पर एक तीसरे व्यक्ति की छाया पड़ी, उसे किसी ने न देखा। तीसरा व्यक्ति आकर उन के पास खड़ा हो गया; तथापि किसी ने न देखा। क्षणभर स्तम्भ की नाईं खड़ा रहा, फिर क्रोध न सम्भाल सका। क्रोधकंपित स्वर से कहा—"शाहज़ादी! यह ख़ूब!"

दोनों ने मुख उठाकर देखा—उसमान।

उसमान अपने अनुचर अंगूठी लानेवाले से सब वृत्तांत सुनकर आयषा की खोज में आए थे। राजपुत्र उसमान को देखकर आयषा के लिए शंकान्वित हुए, कहीं आयषा, उसमान या कुतलू खां से तिरस्कृता या अपमानिता न हों। उसमान ने जो क्रोध के साथ व्यंगोक्ति किया, उस से यही सम्भावना जान पड़ी। व्यंगोक्ति सुनते ही आयषा, उसमान के कथन का अभिप्राय मूल तक समझ

गई । मुहूर्त्त मात्र उस का मुख रक्त वर्ण हो गया, और कोई अधैर्य का चिन्ह प्रकाश न हुआ, स्थिरभाव से कहा—"क्या खूब, उसमान !"

उसमान ने पूर्ववत् भंगी से कहा—"इतनी शब के वक्त तनहा क़ैदी का साथ करना नवाबजादी के लिए मुनासिब है। क़ैदी के लिए क़ैदखाने के खिलाफ़ क़ानून आना भी मुनासिब ही है।"

आयषा के पवित्र हृदय में यह तिरस्कार असह्य हुआ। उसमान के मुख की ओर देखकर उत्तर दिया। ऐसा गर्वित स्वर और कभी उसमान ने आयषा के मुख से नहीं सुना था।

आयषा ने कहा—"इतनी शब के वक्त अकेले क़ैदखाने में आकर इस क़ैदी से गुफ्तगू करना, यह हमारी ख्वाहिश। हमारा काम नेक है या बद इस में तुम्हें कोई मतलब नहीं।"

उसमान विस्मित हुए; विस्मित से बढ़ कर क्रोधित हो कर कहा—"मतलब है कि नहीं, कल सुबह नवाब के ज़ुबानी सुनना।"

आयषा ने पूर्ववत् कहा—"जब वालिद हम से पूछेंगे, हम जवाब दे लेंगे, तुम फ़िक्र न करो।"

उसमान ने भी पूर्ववत् व्यंग किया—"और अगर हमीं पूछें ?"

आयषा खड़ी हो गई। थोड़ी देर तक पूर्ववत् स्थिर दृष्टि से उसमान की ओर देखती रही। उस के बड़े बड़े नेत्र मानो और भी बड़े हो गए। मुख कमल मानो और भी खिल उठा। भ्रमर कृष्ण अलकावली के साथ सिर एक ओर को कुछ झुक गया; हृदय

तरंगान्दोलित सघन शैवाल जल के सदृश उत्कम्पित होने लगा; अत्यन्त परिष्कार स्वर से आयषा ने कहा—"उसमान! अगर तुम दर्याफ्त करोगे, तो हमारा यही जवाब होगा कि, यह कैदी हमारा जाने जां है।"

यदि उस समय उस कक्ष में वज्रपात भी होता तो राजपुत्र या पठान इस से अधिक चकित न होते। राजपुत्र के मन में अंधकार में मानो किसी ने दीपक जला दिया। आयषा के भीतर ही भीतर रोने का मर्म अब समझे। उसमान पहिले ही तनिक तनिक घृणा-ह्रार न्याय से सन्देह करता था, और इसीलिए आयषा के प्रति इस प्रकार से तिरस्कार करता था, परंतु आयषा उसी के मुंह पर मुक्तकंठ हो ऐसा कहैगी, यह उन्हें स्वप्न में भी अगोचर था। उसमान निरुत्तर हो चुप रहा।

आयषा फिर कहने लगी—"सुनो, उसमान! मैं फिर कहती हूं, यह कैदी मेरा जाने जां है। दमे वापसी तक मेरे दिल में कोई दूसरा जगह नहीं पा सकता। अगर कल इन के खून से कतलगाह तर हो—" कहते कहते आयषा कांप उठी "तो भी तुम देखोगे कि दिल के बुतखाने में इन का बुत क़ायम रख कर आखिर वक़्त तक परस्तिश करूंगी। इस वक़्त के बाद अगर हमेशः के लिए इन के साथ मुलाक़ात न हो, अगर कल रिहा होने पर ये सौ गुलबदनों के बीच भी बैठें, आयषा के नाम पर लानत भेजें, तौ भी मैं इन के मुहब्बत की ख्वाहां लौंडी ही बनी रहूंगी। और भी सुनो, मैं अकेली बैठी इतनी देर तक क्या कह रही थी? मैं कह रही थी कि बात से

हो, ज़र से हो, पहरेदारों को राज़ी कर लूंगी, वालिद के अस्तबल से घोड़ा खोल देती हूं, कैदी तुम अभी अपने डेरे में चले जाओ। । कैदी ने खुद ही भागने से इन्कार किया, वरनः अब तक तुम इन का पता भी न पाते।"

आयषा ने फिर आंसू पोंछा। थोड़ी देर ठहरने पर दूसरे प्रकार के स्वर से बोली—"उसमान, यह बातें कह के मैं तुम्हें तकलीफ़ दे रही हूं, कुसूर मुआफ़ फ़र्माओ। तुम मेरे साथ मुहब्बत करते हो, मैं तुम्हें चाहती हूं, यह मुझे नामुनासिब था। मगर आज तुम ने आयषा को नामोतबिर समझा। आयषा और चाहे जो गुनाह करे, मगर नामोतबिर नहीं है। आयषा जो काम करती है वह हांकाठोकी कह देती है। इस वक़्त तुम्हारे सामने कहा, ज़रूरत होगी तो कल वालिद के सामने कह दूंगी।"

फिर जगतसिंह की ओर फिर कर कहा—"कुंअर बहादुर! तुम भी क़ुसूर मुआफ़ करना। अगर उसमान आज मुझे न छेड़ते, तो हर्गिज़ जले दिल की आग कभी तुम्हारे रूबरू ज़ाहिर न होने देती, यह किसी आदमी के कान तक न पहुंचने पाती।"

राजपुत्र चुपचाप खड़े रहे। अंतःकरण संताप से दग्ध होने लगा।

उसमान भी कुछ न बोला। आयषा फिर कहने लगी—

"उसमान, फिर कहती हूं, अगर मैंने ग़लती की तो, ग़लती को मुआफ़ करना। मैं तुम्हारी वही साबिक़ की तरह मुहब्बत से भरी बहिन हूं; बहिन समझ कर तुम भी साबिक़ की मुहब्बत कम

न करना। किसमत की मारो मैं ने रंजो अलम के समुन्दर में अपने तईं डाल दिया; बिरादराना मुहब्बत से नाउमीद कर के मुझे अथाह जल में न डुबा देना।"

यह कह कर सुन्दरी दासी के लौटने की प्रतीक्षा न कर के अकेली ही घर से बाहर निकली। उसमान कुछ देर तक विह्वल हो के चुपचाप रह कर अपने घर की ओर चला।

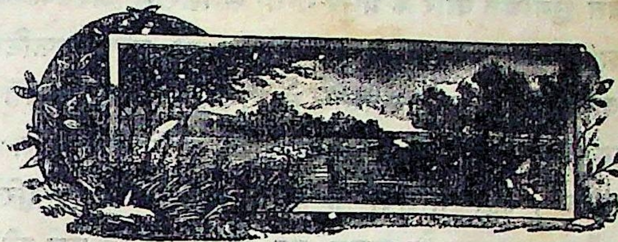

षोड़श परिच्छेद ।

दासी ते चरण ही में है ।

उसी रात्रि में कुतलू खां के विलासभवन में नाच हो रहा था । वहां पर कोई बाहरी नर्तकी, या बाहरी श्रोता न था । जन्म दिन के उत्सव में जैसे और मुग़ल बादशाह लोग पारिषदमंडली के बीच में बैठ कर आमोद परायण रहते, कुतलू खां वैसा न करता । कुतलू खां का चित्त केवल आत्मसुख में रत, इन्द्रियतृप्ति का अभिलाषो था । आज की रात वह अकेला अपनी विलासगृहनिवासिनी-गणों से परिवेष्टित हो कर उन्हीं लोगों के नृत्य, गीत, कौतुक में मत्त था । ख़ोजा लोगों के अतिरिक्त और किसी पुरुष को आने की आज्ञा न थी । रमणीगण, कोई नाचती हैं, कोई गाती हैं, कोई बजाती हैं; और सब कुतलू खां को घेरे बैठी सुन रही हैं ।

इन्द्रिय को मुग्ध करनेवाली सभी सामग्री ढेर की ढेर वहां

वर्तमान थीं। कक्ष के भीतर पैर रक्खो, पैर रखते ही अविरत सिंचित सुगंधित वारि के मधुर गन्ध से सिर से मस्तक पर्यन्त शीतल हो जाता। अगणित चांदी, हाथी दांत, स्फटिक के शमःदानों के तीव्रोज्ज्वल प्रकाश से आंखें चौंधिया जातीं। अपरिमित पुष्पराशि, कहीं माला में गुथी, कहीं स्तूपाकार, कहीं स्तवकाकार, कहीं रमणियों के केशपाश में, कहीं सुन्दरियों के कण्ठ में, मधुर तर प्रभा प्रकाश कर रही है। कोई फूल की पंखी झल रही है, कोई फूल के गहने पहिने है, कोई दूसरी पर फूल के गेंद मार रही है; पुष्प का सौरभ, सुरभिवारि का सौरभ, सुगन्ध दीप का सौरभ, गन्ध द्रव्य मार्जित विलासिनी गण के अङ्ग का सौरभ, घर में चारों ओर सौरभ फैल रहा है। दीपक की दीप्ति, फूल की दीप्ति, रमणी गण के रत्नालंकार की दीप्ति और सब के ऊपर बारम्बार कटाक्षवर्षिणी कामिनीमण्डली की उज्ज्वल नैन-दीप्ति। सप्तस्वर सम्मिलित मधुर वीणादि वाद्य की ध्वनि आकाश को भेद कर छा रही है। उस से भी अधिक परिष्कार मधुरनिनादी (शब्दवाला) कण्ठगीत उस के साथ मिल कर फैल जाता है। साथ ही ताल लय मिलित पाद विक्षेप से नर्तकी के पैर के अलंकार का शब्द मन को मोहे लेता है।

यह देखो, पाठक! मानो पद्मवन में राजहंसिनी समीरणोत्थित तरंग हिल्लोल में नाच रही है; प्रफुल्ल पद्ममुखी सब घेरे बैठी हैं। देखो, देखो, यह सुन्दरी जो नीलांबर पहिरे है, यह जिस के नील-वस्त्र सुनहले तारे खचित हैं; देखो! उस सुन्दरी को देखते हो जो हीरे का तारा धारण किये है, देखो, उस का कैसा सुन्दर

ललाट है ! प्रशांत, प्रशस्त, परिष्कार, इस ललाट में क्या विधाता ने यह विलासगृह लिखा है ? यह जो श्यामा पुष्पाभरणा है देखा, उस के शरीर पर पुष्पाभरण कैसा सजता है ! नारीदेह की शोभा ही के लिए पुष्पों की सृष्टि हुई थी। यह जो देखते हो, जिस के श्रोष्ठाधर सम्पूर्ण मृदुवक्र हैं, जो श्रोष्ठाधर को किंचित् सिकोड़े हुए है; देखो, उस के नीलवस्त्र के भीतर से वर्णप्रभा कैसी फूटकर निकलती है, जैसे निर्मल नीलाम्बु में पूर्णचन्द्रालोक झलक रहा है। यह सुन्दरी जो मराल निन्दित ग्रीवाभंगी करके हंसकर बात करती है, देखो, उस के कान का कुंडल कैसा हिल रहा है ! हे सुकेशि ! सुन्दरि ! तुम कौन हो ? क्यों ऊरुस्थल तक कुंचित अलकराशि छोड़ रक्खी है ? पद्मवृन्त कैसे काल सर्पिणी से ग्रस्त होता है, क्या यह दिखाती हो ?

और, सुन्दरि ! तुम कौन हो, जो कुतलू ख़ां के पास बैठी सुवर्णपात्र में मद्य ढाल रही हो ? तुम कौन हो, कि सब को छोड़ कर तुम्हारे पूर्ण लावण्यमय देह की ओर कुतलू ख़ां बारम्बार सतृष्णनेत्र से देख रहा है ? तुम कौन हो, अव्यर्थ कटाक्ष से कुतलू ख़ां का हृदय बेध रही हो ? इस मधुर कटाक्ष को पहिचानते हैं, तुम विमला हो। इतनी सुरा क्यों ढाल रही हो ? ढालो, ढालो, और भी ढालो, वस्त्र के नीचे छुरी तो है न ? वह तो हई है, तो फिर इतना हंसती कैसे हो ? कुतलू ख़ां तुम्हारे मुख की ओर देख रहा है। यह क्या ? कटाक्ष ! हैं हैं, यह फिर क्या ? यह देखो, सुरापान से मत्त यवन को उस ने गिरा दिया ! इसी कौशल से जान पड़ता है, सब को वर्जित करके कुतलू ख़ां की

प्रेयसी बन कर बैठी हो ! न क्यों बनो, जो हंसी, जो अंगभंगी, जो सरल भाषण, और जो कटाक्ष है ! फिर शराब ! कुतलू खां सावधान ! कुतलू खां क्या करैगा जिस चितवन से देखकर विमला सुरापात्र दे रही है ! यह कैसी ध्वनि है ? यह कौन गाता है ? यह क्या मनुष्य का गान है, या कोई सुररमणी गाती है ? विमला गायकी गण के साथ गाती है। कैसा स्वर है ! कैसी ध्वनि है ! क्या लय है ! कुतलू खां, यह क्या ? तुम्हारा मन कहां है ? क्या देख रहे हो ? मन्द २ मुसकयान के साथ कटाक्ष छुरी से बढ़कर तुम्हारा हृदय पार करता है, क्या यही देख रहे हो ? ऐसे ही कटाक्ष से प्राण हरण करती है, फिर संगीत की संधि के बहाने से कटाक्ष किया। और भी देखा, कटाक्ष के साथ ही साथ कुछ सिर भी हिलता जाता है ! देखा, साथ ही साथ कर्णाभरण कैसा हिलता है ! हां, और शराब दे, मद दे, मद दे; यह क्या ! यह क्या ! विमला उठ कर नाचने लगी। कैसी सुन्दर है ! अंगभंगी कैसी है ! दे मद ! कैसा अङ्ग है ! कैसी गठन है ! कुतलू खां ! जहांपनाह ! स्थिर होइए ! स्थिर ! उः ! कुतलू के शरीर में अग्नि जलने लगी। प्याला ! आहा ! दे प्याला ! मेरी प्यारी ! फिर क्या ! तिस पर फिर हंसी, फिर कटाक्ष ! शराब ! दे शराब !

कुतलू खां उन्मत्त हो गया; पुकार कर कहा—"प्यारी ! तू कहां है ?"

विमला ने कुतलू खां के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"दासी तो चरण ही में है !"—दूसरे हाथ में छुरी—

तत्क्षण भयंकर चीत्कार ध्वनि करके विमला को कुतलू खां ने दूर फेंक दिया। और ज्यों ही उसे फेंका, आप भी धराशायी हो गया। विमला ने उस के वक्षस्थल में मूल तक छुरी पेश दी थी।

"पिशाची—शैतानी—" कुतलू खां यही कह कर चिल्लाया। "न मैं पिशाची हूं—न शैतानी—मैं श्री वीरेन्द्रसिंह की विधवा स्त्री हूं।" यह कहती हुई विमला कक्ष में से दौड़कर भागी।

कुतलू खां को बोलने की क्षमता बहुत शीघ्रता से रहित होने लगी, तथापि साध्य भर चिल्लाने लगे। बीबी लोग यथासाध्य चिल्लाने लगीं। विमला भी चिल्लाते चिल्लाते चली। दूसरे कक्ष में जाकर किसी के बात करने की आहट पायी। विमला ऊर्ध्वश्वास से भागी। एक कक्ष आगे जाकर देखा—यहां प्रहरी और खोजा लोग हैं, चीत्कार सुनकर और विमला को डरी हुई देखकर उन लोगों ने पूछा—"क्या हुआ?"

प्रत्युत्पन्नमति विमला ने कहा—"अनर्थ हुआ, जल्दी जाओ, महल में डाकू आ गए, जान पड़ता है नवाब को खून कर डाला।"

प्रहरी और ख़ोजा लोग ऊर्ध्वश्वास से भीतर की ओर दौड़े। विमला भी ऊर्ध्वश्वास से अन्तःपुर के फाटक की ओर भागी। द्वार पर प्रहरी प्रमोदक्लांत सो रहे थे, विमला बिना विघ्न फाटक के बाहर हो गई। देखा प्रायः सर्वत्र यही दशा है, बिना रोकटोक दौड़ने लगी, बाहर के फाटक पर देखा—प्रहरी लोग जागते हैं। एक ने विमला को देखकर पूछा—"कौन है? कहां जाती है?"

उस समय अन्तःपुर में महा कोलाहल मच रहा था, सब लोग

जाग कर उसी ओर दौड़े जाते थे। विमला ने कहा—"बैठे क्या करते हो ? शोर गुल नहीं सुनते ?"

प्रहरी ने पूछा—"काहे का शोर गुल है ?"

विमला ने कहा—"महल में अनर्थ हो रहा है, नवाब के ऊपर हमला हुआ।"

प्रहरी लोग फाटक छोड़कर भागे; विमला निष्कंटक बाहर निकली।

विमला ने फाटक बाहर निकल कर देखा, एक मनुष्य एक वृक्ष के नीचे खड़ा है। देखते ही विमला पहिचान गई, यह तो अभिराम स्वामी हैं। विमला के पास आने पर अभिराम स्वामी ने पूछा—

"मैं बड़ा घबड़ा रहा था, दुर्ग में कोलाहल काहे का है ?"

विमला ने कहा—"मैं वैधव्ययंत्रणा का बदला चुका कर आई हूं। यहां विशेष बात से काम नहीं है, झटपट आश्रम को चलिए, वहीं सब निवेदन करूंगी। तिलोत्तमा तो आश्रम में पहुंच गई न ?"

अभिराम स्वामी ने कहा—"तिलोत्तमा आसमानी के साथ आगे आ रही है, अभी भेंट होगी।"

यह कह कर दोनों द्रुत वेग से चले। तुरन्त कुटी में पहुंच कर देखा, क्षण भर पहिले ही तिलोत्तमा आयषा की कृपा से आसमानी के साथ वहां पहुंच गई है। तिलोत्तमा अभिराम स्वामी के दोनों पैरों पर गिर कर रोने लगी। अभिराम स्वामी उसे स्थिर कर के

कहने लगे—"ईश्वरेच्छा से तुम लोग पापात्मा के हाथ से मुक्त हुई। अब तिल मात्र भी इस देश में न ठहरना चाहिए। यवन लोग पता पाते ही, अबकी प्राण से मार कर प्रभुहत्या का शोक मिटावैंगे। चलो, हम लोग रात ही रात यह स्थान छोड़ चलैं।"

सब लोग इस परामर्श में सम्मत हुए।

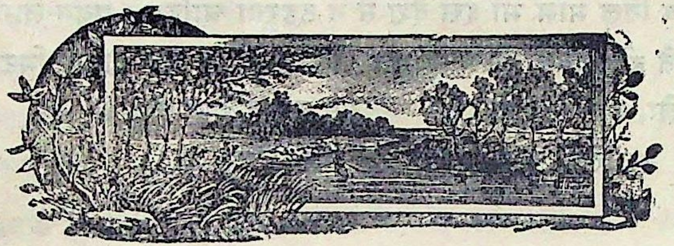

सप्तदश परिच्छेद ।

अन्तिम काल ।

विमला के भागने के क्षण भर पीछे ही एक राजकर्म्मचारी घबड़ाया हुआ जगतसिंह के कारागार में आकर बोला—" कुंअर साहब ! नवाब बहादुर का अख़ीर वक़्त क़रीब है, उन्हों ने हुज़ूर को याद फ़रमाया है ।"

युवराज ने चमत्कृत हो कर पूछा—" यह क्या ? "

राजपुरुष ने कहा—" महल में दुश्मन घुस कर नवाब साहब को मार कर भाग गया । अभी दम नहीं निकला, मगर अब देर नहीं है ; आप फ़ौरन चलिए, नहीं तो मुलाक़ात न होगी । "

राजपुत्र ने कहा—" इस समय हमारी भेंट से क्या प्रयोजन है ? "

दूत ने कहा—"हम क्या जानें, हम तो सिर्फ़ ख़बर देनेवाले हैं ।"

राजपुत्र दूत के साथ महल में गए। वहां जाकर देखा-सच-मुच कुतलू ख़ां का जीवन प्रदीप निर्वाण होने पर आ गया, अन्धकार होने में अब विलम्ब नहीं है। चारों ओर उसमान, आयषा, मुमूर्षु के अप्राप्त वयस्क पुत्रगण, पत्नी, उपपत्नी, दासी, अमात्य-वर्ग, प्रभृति घेरे हैं।

रोने की धूम मची है। प्रायः सभी फूट२ कर रो रहे हैं, शिशु-गण विना समझे रो रहे हैं, केवल एक व्यक्ति चिल्ला कर नहीं रोता, वह आयषा है; आयषा के नयनधार से मुख प्लावित हो रहा है, चुप चाप पिता का मस्तक गोद में रक्खे है।

जगतसिंह ने देखा, यह मूर्त्ति स्थिर गम्भीर है। "निवात निष्पन्दमिव प्रदीपम्।"

'युवराज के पहुंचते ही, ख़ाजा ईसा नामक अमात्य उन का हाथ पकड़ कर कुतलू ख़ां के पास ले गए। जैसे उच्च स्वर से बहिरे को पुकारना होता है, वैसे ही उच्च स्वर से कहा—

"कुंअर जगतसिंह आ गए।"

कुतलू ख़ां ने क्षीण स्वर से कहा—

"मैं दुश्मन हूं,—मरता हूँ—गुस्सा और कदूरत दूर करो।"

जगतसिंह ने समझ लिया, कहा—

"इस समय दूर किया।"

कुतलू ख़ां ने फिर वैसे ही स्वर से कहा—

"दर्ख़ास्त—कुबूल हो।"

जगतसिंह ने कहा—"क्या स्वीकार करना होगा?"

कुतलू ख़ां फिर कहने लगा—

"सब लड़के हैं—जङ्ग—प्यास"

आयषा ने मुख में शर्बत दिया।

"जङ्ग—से काम नहीं—सुलह—"

कुतलू ख़ां चुप हुए। जगतसिंह ने कुछ उत्तर न दिया। कुतलू ख़ां उन के मुख की ओर उत्तर की प्रतीक्षा में देखते रहे। उत्तर न पा कर कष्ट से कहा—"ना मंज़ूर?"

युवराज ने कहा—"पठान लोगों के बादशाह दिल्ली की प्रभुता स्वीकार करने से, हम सन्धि के लिए अनुरोध करने की प्रतिज्ञा करते हैं।"

कुतलू ख़ां फिर अर्द्धस्फुट स्वर से बोले—

"उड़ीसा?"

राजपुत्र समझ गए, कहा,

"यदि हम से कार्य पूरा हुआ तो आप के लड़के उड़ीसा राज्यच्युत न होंगे।"

कुतलू ख़ां की मृत्युक्लेश निपीड़ित मुखकान्ति प्रदीप्त हो गई।

मुमूर्षु ने कहा—"आप—रिहा—ख़ुदा—भला करे—" जगत सिंह ने चलना चाहा—आयषा ने झुक कर पिता से न जानें क्या कह दिया—कुतलू ख़ां ने ख़ाजा ईसा की ओर देख कर फिर राजपुत्र की ओर देखा। ख़ाजा ईसा ने राजपुत्र से कहा—"मालूम होता है, आप से और कुछ कहना चाहते हैं।"

जगतसिंह लौटे, कुतलू ख़ां ने कहा—"कान।"

राजपुत्र समझ गए। मुमूर्षु के बहुत पास आकर मुंह के

पास कान ले गए। कुतलू ख़ां ने और भी अस्पष्ट स्वर से कहा—
"वीर—"

क्षण भर चुप रह कर फिर कहने लगे—

"वीरेन्द्र सिंह—प्यास"

आयषा ने फिर मुख में पेय पदार्थ दिया।

"वीरेन्द्र सिंह की बेटी—"

राजपुत्र को मानो बिच्छो ने दंशन किया; चकित हो कर, सीधे हो कर, कुछ दूर हट कर, खड़े हो गए। कु.तलू ख़ां कहने लगे,

"यतीम—मैं गुनहगार—उः—प्यास"

आयषा पुनः पुनः पानीय सिंचन करने लगी। किन्तु अब बात निकलना दुर्घट हुआ। श्वास छोड़ते छोड़ते कहने लगे—

"ग़ज़ब की जलन—पाकदामन-तुम देखना-" राजपुत्र ने कहा, "क्या?" कुतलू ख़ां के कान में यह प्रश्नमेघ गर्जनवत् जान पड़ा, कुतलू ख़ां कहने लगे—

"इस—ल—लड़की—के—ऐसी—पाक—देखा नहीं—तुम। ऊः!—बड़ी प्यास—चले—आयषा—"

अब और बात न निकल सकी। साध्यातीत परिश्रम हुआ था; अत्यंत श्रम के कारण निर्जीव मस्तक भूमि पर लुढ़क गया। कन्या का नाम मुंह में रहते ही रहते कु.तलू ख़ां का प्राणवियोग हो गया।

अष्टादश परिच्छेद ।

प्रतियोगिता ।

जगतसिंह ने कारागारमुक्त होकर पितृशिविर में पहुंच कर अपने प्रतिज्ञानुसार मुग़ल पठानों में संधि करादी। पठानलोग दिल्लीश्वर की अधीनता स्वीकार करने पर उत्कल देशाधिपति बने रहे। संधि का विस्तारित विवरण इतिहास में वर्णनीय है, यहां विशेष लिखना निष्प्रयोजन है। संधि हो जाने पर कुछ दिन तक दोनों दल जहां के तहां रहे। नई प्रीति बढ़ाने के लिये कुतलू खां के लड़कों को लेकर प्रधान राजमन्त्री ख़ाजाईसा और सेनापति उसमान, राजा मानसिंह के शिविर में गए, पचास हाथी और अन्यान्य बहुमूल्य पदार्थ भेंट करके राजा को संतुष्ट किया। राजा ने भी सभों का बहुत सत्कार कर के खिल्लत देकर बिदा किया।

इस प्रकार संधिकार्य समाप्त करने और शिविर भङ्ग करने के उद्योग में कुछ दिन लग गया।

अब राजपूत सेना के पटना यात्रा करने का समय आया। एक दिन जगतसिंह अपराह्न समय सहचरों के साथ पठानदुर्ग में उसमान प्रभृति से विदा होने के लिए गए। कारागार में भेंट होने के पीछे से उसमान राजपुत्र के साथ सौहृद्यभाव नहीं प्रकाश करते। आज सामान्य बातचीत करके विदा हुए।

जगतसिंह उसमान से उदासमन से बिदा होकर ख़्वाजाईसा से बिदा होने गए। वहां से उठ कर आयषा से विदा होने चले। एक अंतःपुररक्षीद्वारा आयषा के पास सम्वाद भेजा, और रक्षक से कह दिया कि—"कहना कि नवाब साहब के लोकांतर होने पीछे उन से फिर भेंट नहीं हुई। अब हम पटना जाते हैं, फिर भेंट होने की सम्भावना बहुत कम है, इस लिए उन को अभिवादन करके जाना चाहते हैं।"

खोजा ने कुछ देर पीछे लौट आकर कहा कि—"नवाबज़ादी ने कहला भेजा कि वह कुंअर बहादुर से मुलाक़ात न करेंगी; कुसूर मुआफ़ फ़र्माइएगा।"

राजपुत्र बड़े ही विषाद के साथ अपने शिविर की ओर चले। दुर्गद्वार पर देखा—उसमान उन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजपुत्र फिर उसमान को अभिवादन करके आगे बढ़े, उसमान उन के पीछे पीछे चले। राजपुत्र ने कहा—"सेनापति महाशय! आप की यदि कोई आज्ञा हो तो प्रकाश कीजिये। हम प्रतिपालन करके कृतकृत्य हों।"

उसमान ने कहा—"आप के साथ हमें कोई खास काम है। इतने साथियों के सामने हम कह नहीं सकते। साथियों को आगे बढ़ने का हुक्म दें; आप अकेले हमारे साथ आवें।"

राजपुत्र बिना संकोच के सहचरों को आगे बढ़ने की आज्ञा देकर आप घोड़े पर चढ़ अकेले उसमान के साथ चले। उसमान भी घोड़ा मंगाकर सवार हुए। थोड़ी दूर चलकर उसमान राजपुत्र के साथ एक घने शालवन में घुसे। वन के भीतर एक भग्न अट्टालिका थी; जान पड़ता है पूर्वकाल में कोई राजविद्रोही यहां आकर जगल के भीतर छिपा था। शालवृक्ष में घोड़ा बांध कर उसमान राजपुत्र को उस भग्न अट्टालिका में ले गये। अट्टालिका मनुष्यशून्य थी। बीच में प्रशस्त आंगन था, उस के किनारे एक क़बर खुदी हुई प्रस्तुत है; और दूसरी ओर चिता सजी है, परन्तु कोई मृतदेह नहीं है।

आंगन में आकर राजकुमार ने पूछा—"यह सब क्या है?"

उसमान ने कहा—"यह सब हमारे हुक्म से बना है। अगर आज हम मरें तो जनाब हमें इस कब्र में गाड़ दीजिएगा, कोई जान भी न सकैगा; और अगर आप इन्तकाल फ़र्माइएगा तो इस चिता पर ब्राह्मण के ज़रिए से फुकवा देंगे, दूसरा कोई न जानैगा।"

राजपुत्र ने विस्मित होकर पूछा—"इन सब बातों का तात्पर्य क्या है?"

उसमान ने कहा—"हमलोग पठान हैं—दिल में आग भभकने पर मुनासिब नामुनासिब का ख़याल नहीं करते, इस दुनिया में

आयषा की मुहब्बत चाहने वाले दो शख्स की गुंजाइश नहीं है; एक शख्स को यहीं जान देना होगा।"

अब राजपुत्र आद्योपांत सब समझ गए। उदासी से कहा—"आप का क्या अभिप्राय है?"

उसमान ने कहा,—"हथियार बन्द हुई हैं, हमारे साथ लड़ाई कीजिए। ताक़त हो हम को मार कर अपना रास्ता कर लीजिये, नहीं हमारे हाथ से जान गवांकर हमारा रास्ता छोड़ दीजिये।"

यह कहकर उसमान ने जगतसिंह को प्रत्युत्तर देने का अवकाश न दे कर तलवार हाथ में लेकर उन पर आक्रमण किया। राजपुत्र अगत्या आत्मरक्षार्थ झटपट कमर से तलवार खोल उसमान के आघात का प्रतिघात करने लगे। उसमान राजपुत्र के प्राणनाश का बारम्बार उद्यम करने लगे, राजपुत्र ने भूलकर भी उसमान पर आघात न किया, केवल आत्मरक्षा में लगे रहे। दोनों ही युद्धविद्या में सुशिक्षित थे; बहुत देर तक युद्ध होने पर भी कोई किसी को पराजित न कर सका। अन्त में यवन के अस्त्राघात से राजपुत्र का शरीर क्षत विक्षत हो गया, रुधिर से अङ्ग प्लावित हो गया, उसमान के प्रति उन्हों ने एक बार भी आघात नहीं किया था। इस से उसमान अक्षत था। रक्तस्राव से शरीर अवसन्न होते देखकर, और ऐसे संग्राम में निश्चय मृत्यु समझकर जगतसिंह ने कातर स्वर से कहा—उसमान! शांत हो, हमने हार मानी।"

उसमान ने उच्च हास्य करके कहा—

" यह मुझे नहीं मालूम था कि राजपूत सिपहसालार मरने से खौफ़ खाते हैं। जङ्ग करो, हम तुम्हारी जान लेंगे, मुआफ़ न करेंगे। तुम्हारे जीते आयषा को नहीं पा सकते।"

राजपुत्र ने कहा—" मैं आयषा का अभिलाषी नहीं हूं।"

उसमान तलवार घुमाते २ कहने लगे—" तुम आयषा की ख़ाहिश नहीं रखते, आयषा तुम्हारी ख़ाहिश रखती है। जङ्ग करो, मुआफ़ी नहीं है।"

राजपुत्र ने तलवार दूर फेंककर कहा—" हम युद्ध न करेंगे, तुम ने कुसमय में हमारा उपकार किया है, तुम्हारे साथ युद्ध न करेंगे।"

उसमान ने गर्व के साथ राजपुत्र को पदाघात कर के कहा— "जो सिपाही जङ्ग से ख़ौफ़ खाता है, उसे यों लड़ाते हैं।"

अब राजकुमार धीरज न धर सके। झटपट भूमि से तलवार उठाकर, शृगालदंशित व्याघ्रवत् कूद कर राजपुत्र ने यवन पर आक्रमण किया। वह दुर्दमनीय प्रहार यवन न सह सके। राजपुत्र के विशाल शरीराघात से उसमान भूमिशायी हो गये। राजपुत्र ने उन की छाती पर बैठकर हाथ से तलवार छीन ली, और अपनी तलवार उन के गले के पास रख कर कहा—

" क्यों, लड़ाई की साध मिटी ?"

उसमान ने कहा—

" हम रहते तो मिटने की नहीं।"

राजपुत्र ने कहा—

"अभी ही तो जीवन शेष कर सकते हैं।"

उसमान ने कहा—

"करो; नहीं तो तुम्हारी जान लेनेवाला दुश्मन जीता रह जायगा।"

जगतसिंह ने कहा—"रहै; राजपूत इस से नहीं डरते; तुम्हारा जीवन शेष कर देता; किन्तु तुम ने हमारा जीवन रक्षा किया था, हम भी करते हैं।"

यह कहकर दोनों पैर के तले उसमान के दोनों हाथ दाबे रहकर, एक एक करके सब अस्त्र उस के शरीर से खोल लिए; तब उसे छोड़कर कहा—"अब बेखटके घर जाओ, तुमने यवन होकर राजपूत के शरीर में पदाघात किया था, इसी से तुम्हारी यह दशा की है। नहीं तो राजपूत ऐसे कृतघ्न नहीं होते कि उपकारी का अङ्ग स्पर्श करैं।"

उसमान मुक्त होने पर एक बात भी न बोला, घोड़े पर सवार हो झटपट दुर्गाभिमुख चल दिया।

राजपुत्र वस्त्र द्वारा आंगन के कूप से जल खींच लाए और शरीर धोया। शरीर धोकर शालवृक्ष से घोड़ा खोलकर सवार हुए। घोड़े पर सवार होकर देखा—घोड़े की लगाम में लता गुल्मादि से एक पत्र बंधा है। उस में से पत्र खोलकर देखा, कि पत्र मनुष्य के बाल से बांध कर बन्द किया है; उस के ऊपर लिखा है, "यह पत्र

दो दिन के भीतर न खोलिएगा। यदि खोलिएगा तो इस का उद्देश्य विफल हो जायगा ।”

राजपुत्र ने क्षण भर विचार कर के, लेखक के अभिप्रायानुसार ही करना स्थिर किया। पत्र कवच में रख घोड़े को कोड़ा लगा, शिविराभिमुख चले।

राजकुमार ने शिविर में पहुंचने के दूसरे दिन, एक दूसरा पत्र दूत के हाथ पाया। यह पत्र आयषा का भेजा हुआ था। किन्तु उस का वृत्तान्त दूसरे परिच्छेद में वक्तव्य है।

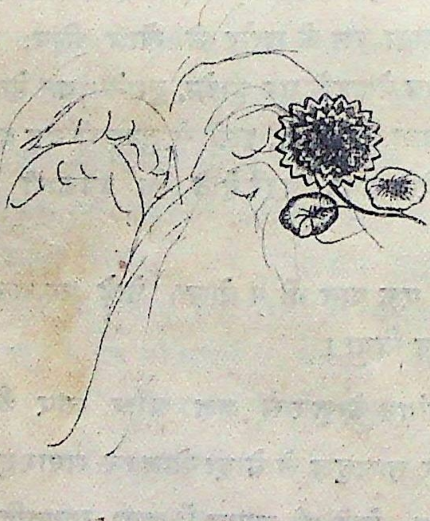

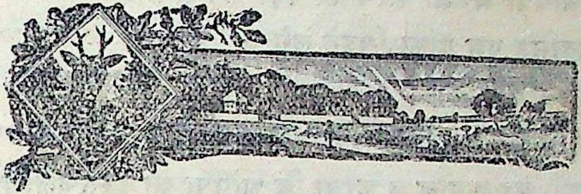

ऊनविंश परिच्छेद ।

आयषा का पत्र ।

आयषा हाथ में लेखनी ले कर पत्र लिखने बैठी है। मुखकान्ति अत्यन्त गम्भीर, स्थिर, जगतसिंह को पत्र लिखती है। एक टुकड़ा काग़ज़ ले कर पत्र लिखना आरम्भ किया। पहिले लिखा "—जाने जां" तुरन्त उसे काट कर—"कुंअर बहादुर" लिखा;—"जाने जां" काट कर —"कुंअर बहादुर" लिखने में आयषा की आंख से धारावाही अश्रुजल निकल कर पत्र पर गिरा। आयषा ने उस पत्र को फाड़ डाला, फिर दूसरे काग़ज़ पर आरम्भ किया। परन्तु कई एक पंक्ति न लिखते लिखते ही फिर अश्रुजल से तर हो गया। आयषा ने उस पत्र को भी बिगाड़ डाला। तीसरी बार अश्रुचिन्हशून्य एक पत्र लिख कर पूरा किया। पूरा करके एक बेर पढ़ने लगी, पढ़ने में वाष्पाकुल नैन से दृष्टि लोप होने लगी। किसी भांति पत्र बन्द कर

के दूत के हाथ में दिया। पत्र लेकर दूत राजपूत शिबिराभिमुख चला। आयषा अकेली पलंग पर पड़ी रोने लगी।

जगतसिंह पत्र पाकर, पढ़ने लगे—

"कुंअर बहादुर!

मैंने जो तुम से मुलाक़ात न की वह अपने इस्तक़लाल पर शक करके नहीं, यह ख़याल न करना कि आयषा को इस्तक़लाल नहीं है, इस से मुझे तकलीफ़ होगी। उसमान ने अपने दिल के अन्दर आग रौशन कर रक्खी है, शायद हमारी तुम से मुलाक़ात होने से, उसे रंज पहुंचे, इसी वजह से मैंने तुम से मुलाक़ात न की। मुलाक़ात न करने से तुम रञ्जीदः होगे, यह उमीद मुझे न थी। अपना रंज—वह सब सुख दुःख खुदाय पाक के क़दमों में नज़र कर चुकी हूं। तुम्हें अगर दूबदू रुख़सत करना होता, तो वह रंज आसानी से बर्दाशत कर सकती। तुम से मुलाक़ात न होने का रंज सङ्गदिली के साथ बर्दाशत कर रही हूं।

फिर यह ख़त क्यों लिखती हूं? एक भीख है, इसी लिए यह ख़त लिखती हूं। अगर सुना हो, कि मैं तुम से मुहब्बत करती हूं, तो उसे भुला दो। इस जनम में इस बात को ज़ाहिर करने की ख़्वाहिश न थी, मगर खुदा की मर्ज़ी से ज़ाहिर हो गई; अब भूल जाओ।

मैं तुम्हारी मुहब्बत की ख़्वाहां नहीं हूं। मुझे जो देना था, दे चुकी, तुम से उस का इवज़ नहीं चाहती। मेरी मुहब्बत ऐसी मज़बूत हो गई है कि तुम्हारे मुहब्बत न करने पर भी मुझे राहत है; मगर उस बात से अब क्या मतलब?

तुम्हें तकलीफ़ में देखा था, अगर कभी आराम पाओ, आयषा को याद कर के ख़बर देना, जी न चाहै तो ख़बर न देना। क्या कभी दिल में रंज पाने पर आयषा की याद आयगी ?

मैं ने जो तुम्हें ख़त लिखा, या आइन्दः लिखूं, तो लोग मुझे इलज़ाम लगावैंगे। मैं बेगुनाह हूं, इस से लोगों के इलज़ाम देने से किसी तरह का हर्ज न समझना, जब जी चाहै ख़त लिखना। तुम जाते हो, इस मुल्क को अब छोड़कर जाते हो। मगर यह पठान लोग शांत नहीं हैं, इस से फिर तुम्हारा इस मुल्क में आना मुमकिन है। मगर मेरे साथ अब मुलाक़ात न होगी। बार बार दिल में ग़ौर कर के यही पुख़्तः कर लिया है, और औरतों का दिल जैसा कमज़ोर क़ाबू से बाहर होता है उस पर ज़ियादः हिम्मत नामुनासिब है।

सिर्फ़ एक मर्तबः और तुम से मुलाक़ात करने का क़स्द है। अगर तुम इस मुल्क में शादी करो, मुझे ख़बर देना; मैं तुम्हारी शादी के वक़्त मौजूद रह कर शादी कर दूंगी। जो तुम्हारी रानी होंगी, उन के लिए चन्द मामूली ज़ेवर मुहय्या कर रक्खा है; अगर मौक़ा मिलैगा, अपने हाथ से पहिरा दूंगी।

एक गुज़ारिश और है। जब आयषा के मरने की ख़बर तुम्हारे पास पहुंचे, उस वक़्त एक मर्तबः और इस मुल्क में आना। तुम्हारे लिए एक सन्दूक़ में जो कुछ रहै, उसे हमारी ख़ातिर से ज़रूर क़बूल फ़र्माना। वालिद की मुहब्बत के सबब से लड़की होकर भी जो हशमत मुझे मिली है; उस का ग़रीब मुल्क में एक राज के बराबर शुमार हो सकता है, अगर अंबर राज घराने में

उस का कुबूल होना मुमकिन हो, तो आकर उसपर कब्ज़ा करना। बख़शिशनामा उसी सन्दूक़ में रहैगा।

और क्या लिखूं? बहुत कुछ लिखने को जी चाहता है, मगर फ़ुज़ूल है। खुदा तुम्हें सुखी करें, आयषा की बात का खयाल कर के कभी रंजीदः न होना।"

जगतसिंह पत्र पढ़कर बड़ी देर तक हाथ में पत्र लिए तम्बू के भीतर टहलते रहे। थोड़ी देर पीछे जल्दी से एक काग़ज़ लेकर निम्नलिखित पत्र लिख कर दूत के हाथ में दिया।

"आयषा, तुम रमणीरत्न हो! संसार में मनःपीड़ा देना ही जान पड़ता है विधाता की इच्छा है! मैं तुम्हारे पत्र का कोई उत्तर न लिख सका। मैं तुम्हारे पत्र से अत्यन्त कातर हो रहा हूं। केवल यही समझ लेना कि तुम्हें सदा प्राणाधिका सहोदरा भगिनी समझ कर हृदय में यत्न से रक्खूंगा।"

दूत यह प्रत्युत्तर लेकर आयषा के पास लौट गया।

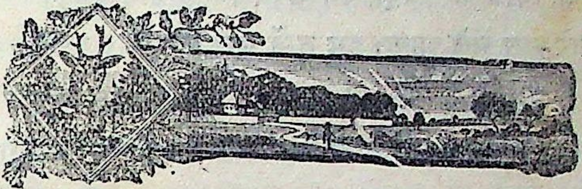

विंश परिच्छेद ।

दीप निर्वाणोन्मुख ।

जब से तिलोत्तमा आसमानी के साथ आयषा से बिदा हो कर आई थी, तब से किसी ने उस का कोई सम्वाद नहीं पाया । तिलोत्तमा, विमला, आसमानी, और अभिराम स्वामी किसी का भी पता नहीं मिलता। जब मुग़ल पठानों में सन्धिसम्बन्ध हो गया, तब वीरेन्द्रसिंह और उन के परिजन की सब अश्रुतपूर्व दुर्घटना स्मरण कर के, दोनों ही पक्ष संमत हुए कि, वीरेन्द्र की स्त्री, कन्या को खोजवाकर गढ़ मान्दारन में फिर स्थापित करना चाहिए। इसी लिए, उसमान, ख़्वाजाईसा, मानसिंह प्रभृति सब ने उन लोगों का बहुत कुछ अनुसन्धान किया, परन्तु तिलोत्तमा के आसमानी के साथ आयषा के पास से आने के व्यतीत, और कोई सम्वाद किसी को न मिला। अन्त में मानसिंह ने निराश होकर एक विश्वासी अनुचर को गढ़ मान्दारन में रख कर के

यह आदेश किया कि—"तुम यहां रह कर मृतजागीरदार की स्त्री, कन्या की खोज करते रहो, इन के मिलने से उन्हें दुर्ग में रख कर के हमारे पास चले आना; हम तुम्हें पुरस्कार और दूसरी जागीर देंगे।"

यही निश्चय कर के मानसिंह पटना जाने का उद्योग करने लगे।

मृत्युकाल में कुतलू खां के मुख से जो सब बात सुनी थी, उस से जगत सिंह के हृदय में कोई भावान्तर हुआ था कि नहीं, यह कुछ भी प्रकाश न हुआ। जगत सिंह ने अर्थ व्यय और शारीरिक क्लेश स्वीकार कर के उन्हीं लोगों का अनुसन्धान अवश्य किया था; परन्तु यह यत्न केवल पूर्व सम्बन्ध की स्मृति से था, या जिन कारणों से मानसिंह प्रभृति यत्न कर रहे थे उन्हीं कारणों से हो, अथवा पुनः सञ्चारित प्रेमानुरोध से उत्पन्न हुआ था, यह कोई भी न समझ सका। जिस कारण से यत्न हुआ हो विफल हुआ।

मानसिंह की सेना शिविर भंग करने लगी। कल सबेरे कूच होगा। यात्रा के एक दिन पहिले घोड़े की लगाम से खोले पत्र के पढ़ने का दिन आया। राजपुत्र ने कौतूहल सहित पत्र खोलकर पाठ किया। उसमें केवल यही लिखा है,—

"यदि धर्मभय हो, यदि ब्रह्मशाप का भय हो, तो पत्र पढ़ते ही इसी स्थान पर अकेले चले आओ। इति निवेदनम्।

अहं ब्राह्मणः"

राजपुत्र पत्र पढ़कर चमत्कृत हुए। एक बेर सोचा - किसी शत्रु की चातुरी भी हो सकती है, जाना उचित है कि नहीं ? राजपूत के हृदय में ब्रह्मशाप के भय के सिवाय और कोई भय प्रबल नहीं होता, इस लिए जाना ही स्थिर हुआ। अपने अनुचर वर्ग को आदेश किया कि यदि सैन्ययात्रा के समय वह न पहुंच सकें, तो वे लोग उनकी प्रतीक्षा में न रहें, सेना आगे बढ़े, कोई चिन्ता नहीं, पीछे से वर्धमान या राजमहल में वह मिल जायँगे। इस भांति आदेश कर के जगतसिंह अकेले शालवन की ओर चले।

पूर्वकथित भग्न अट्टालिका के द्वार पर पहुंच कर राजपुत्र ने घोड़ा शालवृक्ष में बांधा। इधर उधर देखा, कहीं कोई न दिखाई दिया। अट्टालिका में प्रवेश किया, देखा—आंगन में वही एक ओर कब्र और एक चिता सजी हुई है, चिताकाष्ठ के ऊपर एक ब्राह्मण बैठे हैं। ब्राह्मण सिर नीचे किए रो रहे हैं।

राजकुमार ने पूछा—"महाशय, आप ने हम को यहां आने की आज्ञा की थी ?"

ब्राह्मण ने मुख उठाया, राजपुत्र ने देखा अभिराम स्वामी हैं।

राजपुत्र के मन में विस्मय, कौतूहल, आह्लाद, तीनों भाव एक साथ ही उदय हुए। प्रणाम कर के व्यग्रता के साथ पूछा—"दर्शन के लिए कितने उद्योग किए हैं, क्या कहें, यहां क्यों अवस्थिति करते हैं ?"

अभिराम स्वामी ने आंख बन्द करके कहा—

"इन दिनों यहीं वास करते हैं।"

स्वामी का उत्तर सुनने से पहिले ही राजपुत्र प्रश्न पर प्रश्न करने लगे—"हमें किस लिए स्मरण किया? रोते क्यों हैं?"

अभिराम स्वामी ने कहा—"जिस लिए रोते हैं, उसी लिए तुम्हें बुलाया है; तिलोत्तमा का अन्तिमकाल उपस्थित है।"

धीरे धीरे, मृदु मृदु, तिल तिल करके, योधृपति वहीं भूमि में बैठ गए। उस समय आद्योपान्त सब बात एक २ करके स्मरण आने लगीं; एक २ करके अन्तःकरण में तीक्ष्ण छुरिकाघात होने लगा। देवालय में प्रथम सन्दर्शन, शैलेश्वर साक्षात् में प्रतिज्ञा, कक्ष में पहिले परिचय के समय दोनों की आंख से प्रेमाश्रु का प्रवाह, उस कालरात्रि की घटना, तिलोत्तमा का मूर्च्छावस्था में मुख, यवनागार में तिलोत्तमा का पीड़न, कारागार में अपना निर्दय व्यवहार, और अब यहां वनवास में मृत्यु, यह सब एक एक करके राजकुमार के हृदय में आकर झटका की भांति लगने लगे। दबी हुई आंच सौगुनी प्रचण्ड ज्वाला के साथ भभक उठी।

राजपुत्र देर तक हताश हो कर चुपचाप बैठे रहे। अभिराम स्वामी कहने लगे—

"जिस दिन विमला ने यवनवध कर के अपने वैधव्य का बदला चुकाया था, उसी दिन से हम कन्या दौहित्री को लेकर यवनभय से नाना स्थान में अज्ञात भ्रमण कर रहे हैं; उसी दिन से तिलोत्तमा के रोग का संचार है। जिस कारण से रोग का संचार है, वह तुम जानते ही हो।"

जगतसिंह के हृदय में शूल सा विध गया।

"तभी से उसको नाना स्थानों में रख कर नाना भांति की चिकित्सा की है, स्वयं हमने यौवनकाल से चिकित्सा शास्त्र अध्ययन किया, अनेक रोगों की चिकित्सा की, अनेक औषधि ऐसी जानते हैं जिसे लोग नहीं जानते। किन्तु जो रोग हृदय के भीतर है, उसका प्रतीकार नहीं है। इस स्थान को अत्यन्त निर्जन समझ कर आज पांच सात दिन से इसी के एक एकान्त भाग में रहते हैं। दैवयोग से तुम आ गए थे, यह देख कर तुम्हारे घोड़े की लगाम में पत्र बांध दिया था। बहुत दिनों से यह अभिलाषा थी कि तिलोत्तमा को बचा न सके, तो तुम से एक बेर और भेंट करा के, अन्तिमकाल में उसके अन्तःकरण को तृप्त करेंगे। इसी लिए तुम्हें आने को लिखा था। उस समय तक तिलोत्तमा के आरोग्य की आशा दूर नहीं हुई थी, परन्तु समझ रक्खा कि दो दिन में उपशम न होने से अंतिमकाल उपस्थित होगा। इसी लिए दो दिन पीछे पत्र पढ़ने का परामर्श दिया था। जो भय किया था, अब वही उपस्थित हुआ। तिलोत्तमा के जीने की अब कोई आशा नहीं है। जीवन दीप निर्वाणोन्मुख है।"

यह कह कर अभिराम स्वामी फिर रोने लगे। जगतसिंह भी रो रहे थे।

स्वामी ने फिर कहा—"अकस्मात् तुम्हारा तिलोत्तमा के पास जाना न होगा, कहीं इस अवस्था में उल्लास का आधिक्य सह्य न हो सकै। हमने पहिले ही से कह रक्खा है कि तुम्हें आने के लिए सम्बाद दिया है, तुम्हारे आने की सम्भावना है। अब आने का सम्बाद दे आवैं। तब पीछे से तुम साक्षात् करना।"

यह कह कर परमहंस जिधर भग्न अट्टालिका का अन्तःपुर था उधर गए। थोड़ी देर पीछे लौट आकर कहा—"आओ।"

राजपुत्र परमहंस के साथ अंतःपुराभिमुख गए। देखा—एक कोठरी अभग्न है, उस के भीतर जीर्ण टूटा हुआ एक पलंग है, उस पर व्याधिक्षीणा (जिस की रूपराशि में बहुत कम अन्तर पड़ा है) तिलोत्तमा सोई है। इस समय भी, पूर्व लावण्य की मृदुलतर प्रभा परिवेष्टित है। निर्वाणोन्मुखी प्रभात तारा के सदृश मनोमोहिनी हो रही है। पास बैठी एक विधवा स्त्री उस के अङ्ग पर हाथ फेर रही है। वह निराभरणा, मलिना, दीना, विधवा है। पहिले तो राजकुमार उसे न पहिचान सके, कैसे पहिचानते, जो स्थिरयौवना थी वह इस समय प्राचीना हो गई है।

जब राजपुत्र आकर तिलोत्तमा की शय्या के पास खड़े हुए, उस समय तिलोत्तमा आंख बन्द किए थी। अभिराम स्वामी ने पुकार कर कहा—

"तिलोत्तमे! राजकुमार जगतसिंह आए हैं।"

तिलोत्तमा ने आंख खोलकर जगतसिंह की ओर देखा—वह दृष्टि कोमल, केवल स्नेहव्यंजक थी, उस में तिरस्करणाभिलाष का चिन्ह भी नहीं था। तिलोत्तमा की आंखें देखते ही झुक गईं; देखते देखते आंख से दर दर अश्रुधार बहने लगी। राजकुमार से अब न रहा गया, लज्जा दूर गई; तिलोत्तमा के पैताने बैठ कर चुपचाप नैनजल से उस की देह लता को भिंगा दिया।

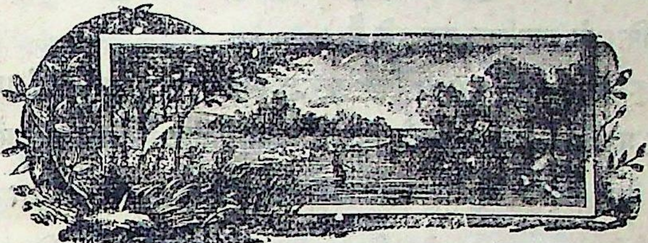

एकविंश परिच्छेद।

सफल होने पर निष्फल स्वप्न।

पितृहीना, अनाथिनी, रुग्णा, शय्या पर है—जगतसिंह उस के शय्यापार्श्व में हैं। दिन जाता है, रात जाती है, फिर दिन आता है, फिर दिन जाता है, रात आती है। राजपूत कुलगौरव उस के भग्न पलंग के पास बैठे शुश्रूषा कर रहे हैं; इस दीना, शब्दहीना, विधवा को बराबर सहायता दे रहे हैं। आधिक्षीणा दुःखिनी उस के मुंह की ओर देखती है कि नहीं—उस के शारदीय पद्‌ममुख पर पूर्वकाल की वह हंसी आती है कि नहीं, यही देखने के लिये उस के मुख की ओर देख रहे हैं।

शिविर कहां है? सेना कहां गई? शिविर भंग कर के सेना पटना चली गई है। अनुचर लोग कहां हैं? दारुकेश्वर के तट

पर प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कहां हैं प्रभु? प्रबल आतप विशोषित सुकुमार कुसुमकलिका को नयनवारि से सींच कर फिर से प्रफुल्लित कर रहे हैं।

कुसुमकलिका क्रमशः फिर प्रफुल्ल होने लगी। इस संसार में स्नेह प्रधान ऐन्द्रजालिक है! व्याधि प्रतीकार में प्रधान औषधि प्रेम है। नहीं तो हृदय व्याधि को कौन उपशम कर सकता?

जैसे बुझता हुआ दीप विन्दु विन्दु तेल देने से फिर हंस उठता है, जैसे ग्रीष्म की मारी वल्लरी आषाढ़ के नववारिसिंचन से फिर धीरे धीरे विकसित होती है, जगत सिंह को पाकर तिलोत्तमा दिन पर दिन वैसे ही पुनर्जीवन प्राप्त होने लगी।

क्रमशः सबला हो कर पलङ्ग पर बैठने लगी। विमला की अवर्तमानता में दोनों जनों को पास पास बैठ कर अनेक दिन की मन की बात कहने की क्षमता हुई। कितनी बातें हुईं, कितने मानसकृत अपराध हुए, कितनी अनुचित आशायें मन ही मन उठीं और मन ही में निवृत्त हो गईं; वह सब कहा; जागते या नींद में कितने मनोमोहन स्वप्न देखा था, सब कहा। रुग्णशय्या पर अचेतावस्था में एक दिन जो स्वप्न देखा था वह एक दिन कहने लगी --

मानो नववसन्त की शोभा परिपूर्ण एक छोटे पर्वत पर वह जगतसिंह के साथ पुष्पक्रीड़ा कर रही है; ढेर के ढेर वसन्तकुसुम चुन कर माला गूंथी, एक माला अपने कण्ठ में पहिरी, और एक माला जगतसिंह के गले में डाल दी, जगतसिंह के कटिस्थ तलवार से फंस कर वह माला बिखर गई।—"अब तुम्हें माला

न पहिरावेंगी, पैर में बेड़ी बना कर डाल रक्खेंगी" यह कह कर मानों कुसुम की बेड़ी बनाई; बेड़ी पहिराने चली, जगतसिंह सरक गए। तिलोत्तमा पीछे पीछे दौड़ने लगी, जगतसिंह वेग से पर्वत से उतरने लगे; रास्ते में एक छिछला सा झरना था, जगतसिंह कूद कर पार निकल गए, तिलोत्तमा स्त्रीजाति, कूद कर पार न हो सकी; जहां पर झरना कम चौड़ा होगा वहां से पार हों, इस आशा से झरने के किनारे किनारे चल कर पर्वत से उतरने लगी। झरना सकरा होना तो दूर रहा, जितना ही आगे जाती है, उतना ही बढ़ता जाता है, क्रमशः झरना छोटी सी नदी हो गया, क्षुद्र नदी क्रमशः वृहत् नदी हो गई, अब तो जगतसिंह दिखाई भी नहीं पड़ते; नदी का किनारा अत्यंत ऊंचा, अत्यंत टेढ़ा मेढ़ा, आगे को पैर नहीं बढ़ता, तिस पर तिलोत्तमा के पैर के नीचे की मिट्टी खण्ड खण्ड हो कर गम्भीर नाद के साथ उपकूल से नदी में गिरने लगी; नीचे प्रचण्ड घूर्णित जलावर्त, देखने का साहस न होता। तिलोत्तमा फिर पर्वत पर चढ़ कर नदीग्रास से भागने की चेष्टा करने लगी। रास्ता टेढ़ा मेढ़ा, पैर चलता नहीं, तिलोत्तमा चिल्ला कर रोने लगी, अकस्मात् कालमूर्त्ति कुतलू खां ने पुनरुज्जीवित हो कर उस का पथ रोध किया, गले की कुसुममाला उस समय लोहे की बेड़ी से भी भारी हो गई; कुसुम की बेड़ी हाथ से छूटकर अपने ही पैरों में जा पड़ी, तुरन्त ही वह बेड़ी लोहे की बेड़ी हो कर जकड़ गई; अकस्मात् अङ्ग स्तम्भित हो गया; तब कुतलू खां ने उस की गरदन पकड़ कर घुमाकर नदीतरङ्ग प्रवाह में गिरा दिया।

स्वप्न की बात समाप्त करके तिलोत्तमा ने सजल नयन हो कहा—"युवराज! हमारा यह केवल स्वप्न नहीं है, तुम्हारे लिए जो फूल की बेड़ी बनाई थी, जान पड़ता है वह सचमुच लोहे की बेड़ी हो कर हमारे ही पैर में जकड़ गई है। जो कुसुममाल पहिरायी थी वह तलवार के आघात से टूट गई।"

युवराज ने हंसकर कमर से तलवार खोलकर तिलोत्तमा के पैर पर रक्खा और कहा—

"तिलोत्तमे! तुम्हारे सामने यह लो असिशून्य हो गए, फिर माला पहिरा देखो, तुम्हारे सामने तलवार को दो खंड कर डालते हैं।"

तिलोत्तमा को निरुत्तर देखकर राजकुमार ने कहा—"तिलोत्तमे! हम केवल दिल्लगी नहीं करते।"

तिलोत्तमा लज्जा के मारे सिर नीचा किए रही।

उसी दिन सन्ध्या समय दूसरे घर में दीपक के प्रकाश में बैठे अभिराम स्वामी पोथी पढ़ रहे थे; राजकुमार ने वहां जाकर विनयपूर्वक कहा—"महाशय! हमारा एक निवेदन है, अब तिलोत्तमा स्थानांतर में जाने का कष्ट सहन कर सकेगी; इस लिए अब इस टूटे घर में कष्ट पाने का क्या प्रयोजन? कल यदि मन्द दिन न हो तो गढ़ मान्दारन में ले चलिए। और यदि आप को अनभिमत न हो तो अम्बर के राजवंश में दौहित्री सम्प्रदान कर के हमें कृतार्थ कीजिए।"

अभिराम स्वामी ने पोथी फेंककर, उठकर राजपुत्र को गाढ़

आलिंगन किया; पोथी के ऊपर पैर रखकर खड़े हैं इस का उन्हें ज्ञान न रहा ।

जिस समय राजपुत्र स्वामी के पास आए थे, उस समय विमला और आसमानी भी भाव समझ कर धीरे धीरे राजपुत्र के पीछे पीछे आई थीं । बाहर रह कर सब सुन लिया था । राजपुत्र ने बाहर आ कर देखा, विमला में अकस्मात् पूर्वभाव आ गया, एक तार हंस रही है, और आसमानी के बाल बिखेरती है और खिलखिला उठती है, आसमानी मारपीट को तृण जान करके विमला के आगे नाचने की परीक्षा दे रही है । राजकुमार एक किनारे से निकल गए ।

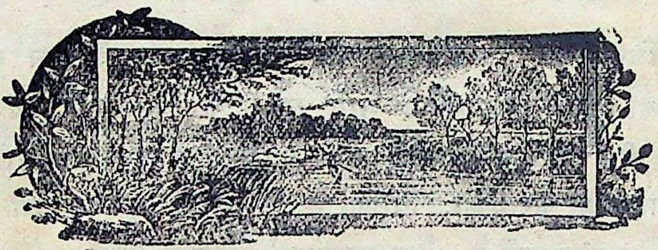

द्वाविंश परिच्छेद ।

समाप्ति ।

फूल खिला । अभिराम स्वामी ने गढ़ मान्दारन में जाकर महा समारोह के साथ अपनी दौहित्री को जगत सिंह की पाणिगृहीती बनाया । उत्सवादि के लिए जगत सिंह ने अपने अनुचर वर्ग को जहानाबाद से निमंत्रण दे कर बुला भेजा । तिलोत्तमा के पितृबन्धु ने भी बहुत से लोगों ने निमंत्रण पा कर इस आनन्द कार्य्य में आकर आमोद आह्लाद मनाया ।

आयषा के प्रार्थनानुसार जगत सिंह ने उन्हें भी सम्बाद दे दियां । आयषा अपने किशोर वयस्क सहोदर तथा और और पौरवर्ग को साथ लेकर आईं ।

आयषा यवनी होने पर भी तिलोत्तमा और जगत सिंह के अत्यन्त प्रेम वश सहचरी गण के साथ दुर्गान्तःपुरवासिनी हुईं ।

पाठक सोचते होंगे, आयषा तापित हृदय से विवाह के उत्सव में उत्सव न मना सकी होंगी। वस्तुतः ऐसा नहीं है। आयषा अपने सहर्ष चित्त की प्रफुल्लता से मन को प्रफुल्लित करने लगीं; प्रस्फुट शारदीयसरसीरुह के मन्दान्दोलन स्वरूप उस मृदु मधुर हंसी से सर्वत्र श्रीसम्पादन करने लगीं।

रात के समय विवाह कार्य समाप्त हुआ। आयषा सहचर गणों के सहित लौटने का उद्योग करने लगीं। हंसते हंसते विमला से बिदा हुईं। विमला कुछ भी नहीं जानती, कहा—"शाहज़ादी! अब आप के शुभ काम में हमलोग निमन्त्रित होंगी।"

विमला के पास से आकर आयषा तिलोत्तमा को बुलाकर एक एकांत कक्ष में ले गईं। तिलोत्तमा का हाथ पकड़ कर कहा—

"बहिन! मैं चली; दिलो जान से दुआ देती हूं, तुम ताब अबद सुख से ज़िन्दगी के दिन बिताओ।"

तिलोत्तमा ने पूछा—"अब कितने दिन पर आप से भेंट होगी?"

आयषा ने कहा—"मुलाक़ात की उमीद कैसे करें?"

तिलोत्तमा उदास हो गई। दोनों चुप हो रहीं।

क्षणकाल पीछे आयषा ने कहा—"मुलाक़ात हो या न हो, तुम आयषा को भूल तो न जाओगी न?"

तिलोत्तमा ने हँस कर कहा—"आयषा को भूलने से युवराज हमारा मुँह न देखेंगे।"

आयषा ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"इस बात से मैं ख़ुश नहीं हुई। तुम हमारी बात कभी कुंअर साहब के सामने न चलाना। इस का मुझ से वादा करो।"

आयषा समझ गई थीं, कि जगत सिंह के लिए आयषा ने जो अपने इस जन्म के सुख को जलांजली दे दिया है, यह बात जगत सिंह के हृदय को शूल स्वरूप बेधती है। आयषा का प्रसङ्ग मात्र उन्हें अनुतापकर हो सकता है।

तिलोत्तमा ने अङ्गीकार किया, आयषा ने कहा —" और भूल भी न जाना, यादगारी के लिए जो निशान दिए जाती हूं, उसे जुदा न कर देना।"

यह कह कर आयषा ने दासी को बुलाकर आज्ञा दी। आज्ञानुसार दासी ने हाथीदांत के डब्बे में रक्खे रत्नालङ्कार ले आई। आयषा दासी को बिदा कर के वह सब अलङ्कार अपने हाथ से तिलोत्तमा को पहिराने लगीं।

तिलोत्तमा धनाढ्य ज़मीन्दार की बेटी थी, तथापि उन अलङ्कारों की अद्भुत कारीगरी और उन में जड़े हीरकादि रत्नों की असाधारण दीप्ति देख कर चकित हो गई। वस्तुतः आयषा ने पितृदत्त निजअङ्गभूषणों को तोड़ कर तिलोत्तमा के लिए ये सब अन्यजन दुर्लभ आभूषण बनवाए थे। तिलोत्तमा उन सबों की प्रशंसा करने लगी। आयषा ने कहा—

" बहिन! इन सबों की तारीफ़ न करो। आज तुमने जिस बेशबहा नगीने को दिल में रक्खा है उस के तलवे की धूर के बराबर भी यह सब नहीं है।" यह बात कहते २ आयषा ने कितने कष्ट से आंख के जल को रोका था, तिलोत्तमा उसे कुछ भी न समझ सकी।

अलङ्कार पहिराना समाप्त होने पर, आयषा तिलोत्तमा का

दोनों हाथ पकड़ कर उस के मुंह की ओर देखने लगी। मनही मन सोचने लगी—"इस भोली मोहब्बत की पुतली का चेहरा देखकर जान पड़ता है प्यारे कभी तकलीफ़ न पावेंगे। अगर खुदा मर्ज़ी और कुछ न हो तो उन के कदमों में यही अर्ज़ है जिस में इस के जरिए से उन्हें हमेशः राहत नसीब हो।"

तिलोत्तमा से कहा—"तिलोत्तमा! मैं चली। तुम्हारे खाविन्द भीड़ भाड़ में होंगे, उन से रुखसत होने के लिये जा कर उन का वक्त जायः न करूंगी। खुदा तुम लोगों को ज़िन्दः व सलामत रक्खै। मैं ने जो सब ज़ेवर दिये हैं, उन्हें बदन में पहिरना, और हमारा—अपना साररतन जो है उसे दिल में रखना।"

"अपना साररतन" कहते हुए आयषा का गला भर आया। तिलोत्तमा ने देखा—आयषा के नयनपल्लव जलभार से स्तम्भित हो कर कांप रहे हैं।

तिलोत्तमा ने सम दुःखिनी की नाईं कहा—"रोती क्यों हो?" तब तो आयषा का नयनवारिस्रोत धारावाही होकर बह निकला। आयषा तिलार्द्ध मात्र भी देर न करके चटपट बाहर आकर डोली पर सवार हुई।

आयषा जिस समय अपने आवासगृह में आकर पहुंची, उस समय भी रात थी। आयषा कपड़े गहने उतार कर खिड़की में आकर खड़ी हुई, जिस से शीतल पवन आ रहा था, अपने उतारे वस्त्र से अधिक कोमल नील वर्ण आकाशमण्डल में लाख २ तारे जगमगा रहे हैं; मृदु पवन हिल्लोल से वृक्षों के पत्ते मर्मर कर रहे हैं, दुर्ग के कंगूरों पर उलूक मृदु गम्भीर निनाद (शब्द) कर रहे

हैं। सामने दुर्गप्रासादमूल में, जहां आयषा खड़ी थी, उसी के नीचे जलपरिपूर्ण दुर्ग की खाईं चुपचाप आकाशपट का प्रतिबिंब धारण किए है।

आयषा खिड़की में बैठी देर तक चिन्ता करती रही। अंगुली से एक अंगूठो उतारी। वह अंगूठो गरलाधार थी। एक बेर मन ही मन सोचती थी—"इस रस को पी करके अभी सब प्यास बुझा सकती हूं। फिर सोचती थी—"क्या इसी काम के लिये खुदा ने मुझे यहां भेजा था? अगर यह तकलीफ़ न सह सकी तो फिर औरत का जामा क्यों पहिरा था? जगत्सिंह ही सुनकर क्या कहेंगे?"

फिर अंगूठी अंगुली में पहिर ली। फिर न जाने क्या सोच कर उतार ली। सोचा—"इस लालच को रोकना औरतों को गैरमुमकिन है; लालच बढ़ानेवाले को दूर ही करना बिहतर है।"

यह कहकर आयषा ने गरलाधार अंगूठो को दुर्ग की खाईं के जल में फेक दिया॥

॥ सम्पूर्ण ॥

SPS
891.433 R 11 D
6553